सिद्धयोग

संस्थापक : योगायोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

जन्मोत्सव विशेषांक

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 55 ; अंक : 01
अप्रैल 2022

प्रकाशन तिथि : 01.04.2022

मूल्य – एक प्रति : 20/-, द्विवार्षिक : 400/-

अमृतकण

कर्मणा मनसा वाचा सद्भिराराध्यो गुरुः
दीर्घदण्डो नमस्कृत्य निर्लज्जो गुरुसन्निधौ

सच्चे भाव से, कर्म से, मन से और **वाणी** से गुरुदेव की आराधना करें। लज्जा **रहित होकर गुरुदेव** के समीप लम्बे दण्ड के समान पृथ्वी पर लेटकर नमस्कार करें।

◆ ◆ ◆

शरीरमर्थसम्प्राप्तिं सद्गुरुभ्यो निवेदयेत्
कृमिविड्भस्मविष्ठान्तं दुर्गन्ध मलमूत्रकम्

अन्त में कीड़ा, विट, भस्म होने वाले दुर्गन्ध मल और मूत्र वाले शरीर को, धन को और ऐश्वर्य को सद्गुरु को अर्पण कर देवें।

◆ ◆ ◆

श्लेष्मरक्तत्वचामांसं तनुरित्थं वरानने
संसारवृक्षमारूढाः पतन्ति नरकार्णवे

हे सुन्दर **मुखवाली**! कफ, लहू, खाल, माँस वाले शरीर रूपी वृक्ष पर चढ़कर जीव नरक रूपी संसार में गिरते हैं।

◆ ◆ ◆

श्रीगुरुवर्यचरणद्वन्द्वम् यस्यां दिशि विराजते
तस्यै दिशे नमस्कुर्यात् भक्त्या प्रतिदिनं प्रिये

हे **प्रिये**! श्री गुरुदेव के दोनों चरण जिस दिशा में **विराजते** हैं, उस **दिशा को** प्रतिदिन भक्ति से नमस्कार करें।

◆ ◆ ◆

गुरुपादप्रसादेन ज्ञानमुत्पद्यते स्वयम्
यनोद्धृतमिदं विश्वं तस्मै श्रीगुरवे नमः

गुरुदेव के चरणों के प्रसाद से ज्ञान **स्वयं** उत्पन्न होता है। जिसने इस विश्व को धारण कर रखा है उन श्री गुरुदेव को नमस्कार है।

●●●

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

अर्थ :—शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली ''सिद्धयोग'' नामक पत्रिका सत्पुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सक्षम व सहायक हो।

वर्ष : 55 / अप्रैल 2022 / अंक : 01

अग्ने ! नय सुपथा राये

अग्ने ! नय सुपथा राये अस्मान्
विश्वानि देव वयुनानि विद्वान्।
युयो ध्यस्मज्जुहुराहुराणमेनो
भूयिष्ठान्ते नम उक्ति विधेम।।

अर्थात् - हे अग्निदेव ! मेरे सर्वज्ञ भगवान् ! हमें अपना ऐश्वर्य देने के लिए सुपथ से ले चलो ! आप उन समस्त कर्मों तथा प्रणीतियों को जानते हैं जिन पर चलने से ऐश्वर्य प्राप्त होता है। हमारे अन्दर से कुटिलता रूप पाप को हटा दो जिससे हम बार-बार आपके चरणों में प्रणत हो सकें आपका सामीप्य प्राप्त कर सकें।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spiritual values

संस्थापक :

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :

आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक

डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :

समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

अनुक्रमणिका

1.	विशेष लेख- योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज	3
2.	सम्पादकीय	9
3.	श्रीमद्भागवत् में योग-परिचर्चा- डॉ. विजय सिंह	12
4.	आत्म-अनात्म विवेक एवं योग- आचार्य डॉ. दास लाल शर्मा	16
5.	हमारे श्री प्रभु जी कौन हैं- जगदीश राए बंसल	18
6.	चित्तवृतियाँ- श्री डॉ. कृष्ण कान्त शर्मा	24
7.	योगेश्वर चरित्र माला- योगयोगेश्वर अनन्त श्री गुरुदेव जी द्वारा	33
8.	मानव प्रगति में श्रद्धा- डॉ. जगदीश शरणा द्विवेदी	36
9.	मानसिक सदाचार- श्री परिपूर्णानन्द वर्मा	39
10.	साधन सिद्धि का उपाय- श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह	42
11.	मुक्ति का स्वरूप- श्री सूर्य प्रसाद उपाध्याय	47
12.	तपोमूर्ति स्वर्गीय बहिन जी द्रोपदी देवी	51
13.	आय- व्यय	56

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 215.00
द्विवार्षिक	: रु. 400.00
आजीवन (10 वर्षीय केवल)	: रु. 1200.00

हमारा विशेष लेख–

मेरे श्री गुरुदेव

योगयोगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुरेव परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरवे नमः।।

मैं अपने श्री गुरुदेव के चरणारविन्द की महिमा किन शब्दों में लिखूँ यह मेरी समझ में नहीं आ रहा। गुरुदेव एक ऐसा शब्द है जो सभी के लिए मान्य है और हर व्यक्ति जो किसी भी प्रकार से गुरुदेव की शरणागति प्राप्त कर चुका है, उसके लिए उसके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं। साधक जब तक गुरुदेव के स्वरूप में ईश्वर बुद्धि धारण नहीं करता तब तक वह परम श्रेय के पथ का पथिक नहीं बन सकता, इसलिए भारतीय संस्कृति का ज्ञान रखने वाली भारतीय जनता अपने–अपने गुरुदेव के चरणारविन्द में पूर्ण ईश्वर बुद्धि रखती है व श्री गुरुदेव के चरणारविन्दों में न्यौछावर होना अपना परम पुनीत सौभाग्य समझती है। गुरुदेव क्या हैं और उनका स्वरूप क्या है?यह एक पृथक लेख का विषय है, जिसका प्रकाशन इस पत्र के किसी अंक में अवश्य होगा। फिर भी मैं इतना बतला देना उचित समझता हूँ कि गुरुदेव के दो स्वरूप होते हैं– एक उनका अपना निज स्वरूप और दूसरा साधक की श्रद्धा से निर्माणित स्वरूप।जगदात्मा भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने मुखारविन्द से श्रीमद्भगवद्गीता के 17 वें अध्याय में कहा है :–

सत्त्वानुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।
श्रद्धामयोऽयं पुरुषो यो यच्छ्रद्धः स एव सः।।

अर्थात् परमात्मा का रूप श्रद्धामय है, जैसी जिसकी श्रद्धा होती है वैसा ही उसमें सच्चिदानन्द घन नित्य चेतन का स्वरूप होता है। श्रद्धा साधक के अपने हृदय का पवित्र उद्‌गार है। श्रद्धावान् व्यक्ति जिसके विषय में जो सोचता है वहीं से उसको ईश्वरीय शक्ति मिल जाती है। धन्ना जाट, नामदेव आदि के जितने उदाहरण मिलते हैं वह सबके सब श्रद्धा के ही उज्ज्वल प्रतीक हैं। किसी साधारण व्यक्ति को ईश्वरीय भावना से देखना यह भक्त के हृदय की पवित्र भावना है व ईश्वर का ईश्वर होना उसकी अपनी यथार्थता है। गुरुदेव के विषय में भी सभी आस्तिक लोगों की ईश्वरीय भावना होती है और अपनी भावना के अनुरूप ही वह लोग फल को पा लेते हैं **''यादृशी भावना यस्य सिद्धिर्भवति तादृशी।''** इसके अतिरिक्त यदि श्रद्धेय पुरुष परिपूर्ण है और साधक श्रद्धा का पुतला है तो अभीष्ट लाभ में कोई शंका का स्थान है ही नहीं। मेरे गुरुदेव जिनके विषय में यह पंक्तियाँ लिखने लगा हूँ सिद्धों के महा सिद्ध, सर्व समर्थ योगयोगेश्वर व सर्वतः परिपूर्ण हैं। उनकी पवित्र ख्याति को बहुत ही कम लोग जान पाये हैं। सम्भव हो सकता है कि इस विषय में उनका अपना ही संकल्प हो किन्तु उनके चरणारविन्दों के चिन्तन करने वाले सर्वसाधारण जन समुदाय के अन्दर जो–जो चमत्कारिक घटनायें घटित होती रहती हैं उनका इस छोटे–से लेख के अन्दर लिखना भी सम्भव नहीं हो सकता।

उनकी पवित्र जन्म भूमि अमृतसर (पंजाब) है। अमृतसर में ज्योतिष विद्या के गण्यमान्य

विद्वान् महामान्य पं. गण्डाराम जी ज्योतिषी के घर में उनका पवित्र अवतरण हुआ। लगभग बारह या चौदह वर्ष की आयु तक बाल–क्रीड़ा करते हुए घर पर रहे। उसके बाद तीव्र वैराग्य के भावों से प्रेरित होकर घर से निकल पड़े और कुछ दिन साधु समुदाय के अन्दर घूमते हुए निर्जन वनों में भ्रमण करने लगे। इसमें सब से बड़े आश्चर्य की बात यह थी कि जहाँ–जहाँ पर कोई पहुँच वाला सन्त मिलता और मेरे गुरुदेव जी के स्वरूप को पहचानता वही गदगद कण्ठ होकर स्तुति करता और कृपा की भीख माँगता। इन पंक्तियों में मैं अपने गुरुदेव जी के जीवन चरित्र के विषय में कुछ लिखूँ, यह मेरा लक्ष्य नहीं है। फिर भी इतना कह देना तो आवश्यक ही है कि अपने बाल्यकाल में ही वह घटनायें घटीं जो सर्वसाधारण के जीवन में कभी हो नहीं सकतीं। चार साल की उम्र में माता–पिता को दिव्य ज्योति का अनुभव कराना, छः साल की उम्र में वृद्धा पड़ोसिन जो मरणासन्नावस्था में थी उसके सिर पर अपने कर–कमल का स्पर्श कर पूर्ण गति का वरदान देना, लगभग 9 वर्ष की अवस्था में अमृतसर के पास रामतलाई पर दर्शनार्थ आने के इच्छुक महात्माओं को स्वयं ही जाकर दर्शन देना, चौदह या पन्द्रह साल की उम्र में वनों को जाते हुए मुरादाबाद की तरफ से निकलते हुए किसी गाँव में किसी कुम्हार के लड़के के सिर पर कर स्पर्श करके दिव्यानुभूति कराना व खेचरी मुद्रा की पूर्णता का वरदान देना उनके जन्मजात सहज सामर्थ्य का पूर्ण परिचायक है। किन्तु फिर भी लोक–लीला का अनुसरण करते हुए जंगलों में विचरते रहे और अपनी इस वन–यात्रा में कई तपस्वी साधुओं पर परमानुग्रह कर उनको सफल मनोरथ बनाया और अपने आप थोड़े ही समय के अन्दर नेपाल हिमालय को चले गये। नेपाल की राजधानी काठमांडू से ऊपर जहाँ बागमती गंगा का उद्‌गम स्थान है, वहाँ से कुछ दूर चल कर किसी झार–खण्ड में रह कर घोर तपस्या का जीवन व्यतीत करते रहे। उस स्थान पर ही स्वयं सदा शिव स्वरूप एक महापुरुष आये जो मेरे श्री गुरुदेव जी को हिमालय के हिमाच्छादित प्रदेश में आकाश मार्ग से ले गये और एक स्थान पर छोड़ दिया। केवल दो एक बातें बतलाईं। एक नर–भक्षक जड़ी दिखलाई और कहा कि यह जड़ी नर–भक्षक है, मनुष्य को खा जाती है। दूसरी बात कि तुम यहाँ रहो, यह कह कर वह महापुरुष अपनी गुफा में जाकर के समाधिस्थ हो गये। उस स्थान से 6–6 मील 7–7 मील की दूरी पर कोई–कोई सिद्ध महापुरुष रहते थे। मेरे श्री गुरुदेव विचरते हुए उन लोगों से मिले। उन लोगों ने बताया, यह महापुरुष सदाशिव हैं और कई हजार वर्षों से यहाँ पर बैठे हुए हैं। यही सिद्धियों के दाता स्वयं महासिद्ध हैं और छः महीने में एक बार समाधि से उठते हैं। श्री प्रभुजी मेरे गुरुदेव अपने मुखारविन्द से यह बतलाते थे कि जब तक श्री महाप्रभु जी समाधि से उठे तब तक उनकी अपनी भी कई रोज की समाधि लग उठी थी। इसका अर्थ यही है – 'गुरोस्तु मौनं व्याख्यानं शिष्यास्तुछिन्नसंशयाः।' अर्थात् गुरुदेव का चुपाचुपी का व्याख्यान हो और शिष्यों के संशय स्वतः ही नष्ट होते चले जायें। यही सद्‌गुरु तत्व की महत्ता है। सामर्थ्यवान् गुरुदेव को बहुत उपदेश करने की आवश्यकता नहीं होती उनका संकल्प ही ''कर्त्तुमकर्त्तुमन्यथाकर्त्तुम्'' की शक्ति रखता है। मेरे श्री गुरुदेव हिमालय के उन हिमाच्छादित शिखरों पर लगभग 12 वर्ष रहे और फिर संसार के पतित एवं वेदनापूर्ण दुःखी जीवों को देखकर उन दयासागर जी के मन में दया के भाव उमड़े और उन्हें संसार के आधिव्याधियों से पीड़ित दुःखी प्राणियों का पवित्र योग मार्ग का पथ प्रदर्शन करने के लिए श्री कृपानिधि जी भू–मण्डल पर लौट आये। श्री गुरुदेव जी अपने मुखारविन्द से यह कहा करते थे कि हिमालय के हिमाच्छादित शिखरों पर बैठ करके आधि–व्याधियों से पीड़ित दुःखाक्रान्त जीवों को देखा और उनके भले की भावना पूर्णरूपेण मन में

जाग उठी, अत: पुन: संसार में आ करके प्राणी मात्र के भले के लिए पवित्र योग–मार्ग के प्रचार का आरम्भ कर दिया –

प्रज्ञाप्रासादमारुह्य अशोच्य: शोचतो जनान्।
भूमिष्ठानिव शैलस्थ: सर्वान् प्राज्ञोऽनुपश्यति।।

अर्थात् प्रज्ञा–प्रासाद पर आरूढ़ हुए योगिराज संसार वालों को इस प्रकार देखते हैं जैसे पर्वत शिखर पर बैठे हुए व्यक्ति भूमि वालों को देख लिया करते हैं। ठीक इसी उदाहरण के प्रतीक बन कर मेरे श्री गुरुदेव भू–मण्डल पर आये और उन्होंने योग–प्रचार का पवित्र कार्य प्रारम्भ कर दिया। श्री प्रभुजी ने इस अवनि–मण्डल पर आकर तीन प्रकार के कार्य आरम्भ किये –

(1) योग के सरल साधनों द्वारा रोग निवृत्ति–इसमें भी सबसे विशेष बात यह थी, निज निर्मित साधनों का प्रचार। इनमें उनका एक प्रमुख साधन था 'जीवन तत्व साधन' इस जीवन तत्व साधन के अन्दर नौ क्रियायें हैं, जिनके करने से लोगों को अद्भुत व आश्चर्यजनक लाभ होता है। इस साधन के अन्दर सबसे बड़ी विशेषता यह है कि यह लगातार विधि–विधान पूर्वक करने से पेट में इस प्रकार की अग्नि पैदा करता है जिसको 'वृक' अग्नि कहते हैं। जिस प्रकार जंगली जानवर भेड़िया को हर समय भूख लगती रहती है, उसी प्रकार इन साधनों को करने से मनुष्य को हर समय भूख लगती रहती है। पेट में एक अग्नि सी धधकती मालूम पड़ती है। वह अग्नि तब तक बन्द नहीं होती जब तक मनुष्य का स्वास्थ्य पूर्णरूपेण ठीक न हो जाये। इसके साथ–साथ इस साधन के अन्दर एक प्रमुख विशेषता यह है कि इस साधन को करते हुए बच्चे का ध्यान करने की एक विधि है जिससे मन की एकाग्रता बनकर स्वाभाविक लाभ होता है और बच्चा दीखने लगता है। इस बच्चे के देखने का आह्लाद हर समय बना रहता है और उससे उसके अधिकांश रोग की निवृत्ति हो जाती है। इसके साथ ही साथ दृढ़तर अभ्यास करने के बाद वही बच्चा श्रीकृष्ण आकृति में बदल जाता है, और साधक का आध्यात्म में प्रवेश हो जाता है। इस साधन का नाम है जीवन तत्व साधन।

'जीवन तत्व साधन' को हमने पुस्तक के रूप में प्रकाशित करा दिया है। इसका सभी को अवलोकन करना चाहिए।

इन क्रियाओं के लिए समय का विभाजन इस प्रकार रखना चाहिए :–

1 : सर्वोत्तान – केवल तीन बार, समय केवल अधिक से अधिक दो मिनट।
2 : स्कन्ध चालन – समय पन्द्रह मिनट।
3 : पादचालन – आठ मिनट।
4 : नाभिचालन – पन्द्रह मिनट।
5 : जानुप्रसार – दोनों ओर से तीन बार, समय लगभग चार मिनट।
6 : बालमचलन – केवल एक मिनट।
7 : बच्चे का ध्यान – पाँच मिनट।
8 : नाड़ी संचालन – पन्द्रह मिनट।
9 : उत्क्षेपण – केवल एक या दो मिनट।

इसी प्रकार यदि क्रियायें अधिक बढ़ानी हैं तो समय अधिक बढ़ाया जा सकता है। सभी प्रकार की बीमारियों में मेरे गुरुदेव के अपने मन से प्रकट किया हुआ यह जीवन तत्व साधन अमृत के समान परम लाभदायक है। इसमें भी बच्चे का ध्यान सब प्रकार से लोक व परलोक के लिए परम

श्रेयस्कर है।

इसके अतिरिक्त राजयक्ष्मा के क्षीण रोगियों के लिए गुरुदेव जी ने अपने मन से अमर तत्व साधन को निकाला।

(2) **अमर तत्व साधन –** जिसमें केवल क्षीर समुद्र का ध्यान किया जाता है और हाथ–पैरों को इस प्रकार से चलाया जाता है जिस प्रकार हम समुद्र में तैर रहे हो। जो साधक श्री गुरुदेव की परम कृपा से अपने को क्षीर–सागर में तैरते हुए देखने लग जाते हैं, उनका राज–यक्ष्मारोग बहुत थोड़े दिन में दूर हो जाता है और उनको इतनी प्रसन्नता होती है कि उसमें उनकी समस्त बीमारियाँ भाग जाती हैं और बहुत ही थोड़े दिन के अन्दर अपने आपको पूर्ण स्वस्थ देखने लगते हैं। प्रथम बार श्री गुरुदेव जी यह जीवन तत्व व अमर तत्व साधन आदि साधन को ही लोक–हितार्थ कराया करते थे; किंतु कुछ समय बाद नेति, धौति, न्यौली, बस्ति, गजकरणी आदि क्रियायें भी अधिकारी देखकर कराने लगे। इसके अतिरिक्त अन्य आसन, बन्ध, मुद्रायें और विभिन्न प्रकार की गुप्त क्रियाओं का शिक्षण भी आरम्भ कर दिया, यह सबसे बड़ा कार्य उन्होंने संसार में आकर किया।

(3) **शक्तिपात दीक्षा –** जो प्रत्येक व्यक्ति के लिए सम्भव नहीं हो सकता। हमारे शास्त्रों में योग का वर्णन दो प्रकार से मिलता है– सिद्धयोग और साधन योग। साधन योग में मनुष्य साधन करता–करता शनैः–शनैः अपने चरम लक्ष्य को प्राप्त कर लेता है और सिद्ध योग में सिद्धानुग्रह से ही मनुष्य का उत्थान हो जाता है और उसकी प्रगति इतनी ऊँची होती है कि जिसे वह अपने पुरुषार्थ से अनेक जन्म में भी नहीं प्राप्त कर सकता। सिद्धयोग के दाता पूर्ण सद्गुरु सिद्ध योगिराज ही हो सकते हैं और वही लोग शक्ति संचार भी कर सकते हैं। इस 'सिद्धयोग' का प्रारम्भ भगवान् सदाशिव से हुआ। पुराणों में हिमालय के घन–घोर जंगलों में होने वाले एक सिद्धाश्रम की चर्चा मिलती है, जिसमें भगवान् सदाशिव के शिष्य–प्रशिष्य योगाचार्यगण निवास करते हैं, यह सभी लोग महासिद्ध हैं और समय–समय पर संसार में व्यस्त गृहस्थ जनों को सन्मार्ग–दर्शन के लिए संसार में आया करते हैं। यह लोग सर्व समर्थ महापुरुष हैं। यही लोग शक्ति संचार कर सकते हैं। मेरे श्री गुरुदेव भी इन सबकी तरह एक अनादि महासिद्ध हैं। उन्होंने संसार में आकर शक्ति पात दीक्षा देनी प्रारम्भ की।

उनके कृपा–फल को प्राप्त कर कितने ही सैंकड़ों की संख्या मे साधु जंगलों में समाधि लगा रहे हैं, और तत्व विजयी होकर अपने शरीरों को एक सुन्दर नवयुवक के समान रखते हैं। कितने ही साधु षट्चक्रों का भेदन करके लोक–लोकान्तरों में गमन करने की शक्ति वाले हो गये और स्वायत्ततनु होकर हिमालय की कन्दराओं में निवास कर रहे हैं। मेरे गुरुदेव योग–योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज सन् 1914 के लगभग हरिद्वार के कुम्भ मेले में प्रथम बार हिमालय से उतर कर आये। जिन जीवों के संस्कार उनके चरणारविन्द में उन्हें ले आते हैं या जो इस पवित्र योग–मार्ग के जिज्ञासु हैं उनको पवित्र योग–मार्ग का अनुयायी बनाकर चरम लक्ष्य की ओर अग्रसर करना, हरिद्वार कुम्भ मेले के समय उनके अपने संकल्प से ही उनके कुटुम्बी जनों ने उन्हें पहिचाना और साधारण चर्चाओं में ही तर्क वितर्क करने लगे कि महाराज जी आप कहीं पर किसी स्थिति में रहें, अब हम आपको अवश्य ही पहचान लेंगे। श्री महाराज जी ने उन लोगों से कहा कि भाई! हम साधू हैं तुम्हें हमसे आग्रह नहीं करना चाहिए। तुम अपना कार्य करो हम अपना कार्य करेंगे। किंतु वे लोग नहीं बदले। आग्रह करते ही रहे। इसी बीच में उन्होंने आश्चर्य देखा कि उनसे

बात करते–करते ही श्री गुरुदेव जी वहीं अन्तर्धान हो गये। वे लोग लाख प्रयत्न करने पर भी उनका अन्वेषण नहीं कर सके। अपनी हठ–धर्मी का दुष्परिणाम पाकर उन सभी को महान् दुःख हुआ। किन्तु उनको यह भी ज्ञान हो गया कि यह हमारे कुटुम्बी भाई बन्धु ही नहीं हैं किन्तु कोई सामर्थ्य वान् परम योगिराज हैं। श्री गुरुदेव जी की इस प्रभुता को जानकर लोगों ने अत्यन्त विनय की, जिसके फलस्वरूप श्री प्रभु जी वहीं प्रकट हो गये किन्तु एक बालक के रूप में। उस बालक को यह लोग नहीं पहचान सके। सोचते रहे यह कोई 15–16 साल का बालक है। कहीं कुम्भ मेले में आया होगा, हमारे पास आकर बैठ गया है। किन्तु इन लोगों की अनभिज्ञता को देखकर उस बालक के रूप में छिपे हुए सर्व समर्थ सिद्धों के सिद्धेश्वर मेरे गुरुदेव उनसे मुस्करा कर कहने लगे कि भाई तुम किस चिन्ता में हो?किसका अन्वेषण कर रहे हो?उन लोगों ने कहा; ब्रह्मचारी जी! हमारे एक नाई साधू रूप में अभी–अभी यहाँ थे, किन्तु पता नहीं कहाँ चले गये हैं?हमने उनके साथ बड़ा आग्रह किया था, उस आग्रह का हमें भारी पश्चाताप है। जब वह लोग यह कह ही रहे थे तो उनको बड़ा आश्चर्य हुआ कि वहाँ कोई ब्रह्मचारी नहीं है, प्रत्युत योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज हैं। इस अद्भुत घटना को देखकर सभी कुटुम्बी जनों ने निश्चय कर लिया कि यह केवल मात्र हमारे कुटुम्बी ही नहीं हैं, किन्तु इस आकृति में छिपे हुए कोई सर्वसमर्थ योगिराज हैं उसके बाद उन्होंने श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में कोई हठ नहीं की और अपने–अपने घरों को लौट गये। कुछ लोगों ने श्री प्रभुजी को अमृतसर ले जाने का हठ किया श्री प्रभुजी की स्वयं अपनी इच्छा थी ही इसलिए वह हिमालय से उठकर के आये। उनके हठ को स्वीकार करके अमृतसर चले गये और वहाँ जाकर कुछ समय के लिए पण्डित वेष में रहने लगे। यह श्री प्रभु जी का गृहस्थ वेष था। इस वेष में उनको कोई पहचान नहीं सकता था। केवल अपने निवास स्थान पर रहते हुए जिस समय वन की बात किया करते थे सुनने वाले समझते थे कि इतने घनघोर जंगलों में सम्भवतः नहीं गये होंगे। अचानक इन्हीं दिनों में एक घटना घटी। अमृतसर में हाल दरवाजे से बाहर एक सराय है, जिसको सन्तराम की सराय कहते हैं। उसमें एक परम तेजस्वी देदीप्यमान मुख–मण्डल वाले एक महात्मा आकर समाधिस्थ होकर बैठ गये। वह बिल्कुल नग्न थे। तीन दिन व तीन रात्रि बिना कुछ खाये पिये समाधि स्थिति में वह महात्मा वहीं बैठे ही रहे। सारे शहर में उनकी ख्याति फैल गई। दर्शकों की भारी भीड़ उनके पास एकत्र हो गई। श्री प्रभुजी के चरणारविन्द में जाकर गृहस्थी लोगों ने प्रार्थना की श्री महाराज जी! आप बड़े–बड़े जंगलों में हो आये हैं, किन्तु अभी तक आपको इस प्रकार के सिद्ध योगिराज जी नहीं मिले होंगे जैसे महात्मा सन्तराम की सराय में आकर बैठे हैं। वह तीन दिन से बिल्कुल निराहार हैं और पत्थर की मूर्ति की तरह से बैठे हैं, न हिले हैं न डुले हैं। चलिए आपको भी उनके दर्शन करा लावें। श्री गुरुदेव जी ने उत्तर दिया, भाई! हमें रहने दो, तुम्हीं दर्शन कर आओ। जब तीन रात्रि से बैठे हैं तो अच्छे तो हैं ही। किन्तु लोगों ने बड़ी भारी हठ की। लोगों के मन में यह भावना थी कि उस महात्मा को देखकर श्री गुरुदेव जी आश्चर्य चकित हो जायेंगे और कहेंगे कि हाँ, यह तो कोई अवश्य सिद्ध योगिराज हैं। किन्तु बात कुछ और ही थी। श्री प्रभु जी उन लोगों के आग्रह करने पर सन्तराम की सराय में गये। जहाँ वह महात्मा समाधि लगाकर बैठे हुए थे, धीरे–से उनके पीछे जाकर खड़े हो गये। लोगों को यह आश्चर्य हुआ कि और लोग सामने खड़े हैं और यह पीठ के पीछे खड़े हैं। थोड़ी ही देर में लोगों ने देखा कि महात्मा के शरीर में एक कम्पन पैदा हुआ। उस कम्पन के साथ उनके प्राण–कोष ब्रह्माण्ड से नीचे आ गये। महात्मा सचेत होकर जाग उठे और बड़ी तीव्रता के साथ खड़े होकर परम करुणार्णव मेरे श्री गुरुदेव जी के चरणारविन्द में

गिर पड़े और चरणों से लिपट गये। महात्मा इतने रोये कि श्री प्रभुजी के बहुत समझाने पर भी उनके आँसू बन्द नहीं होते थे। श्री प्रभुजी ने उनको दोनों हाथों से उठाकर कण्ठ से लगा लिया और सिर पर हाथ रख आशीर्वाद देते हुए कहा — बेटा! रोते क्यों हो? मैंने ही तुमको शतपथ से बुलाया है तुम्हारी समाधि अपूर्ण थी, आज से वह पूर्ण हो जायेगी और तुम्हारी खेचरी मुद्रा सिद्ध हो जायेगी। आकाश–गमन आदि सब ठीक हो जायेगा। महात्मा ने बड़ी कठिनता से श्री प्रभुजी से हाथ जोड़ कर प्रार्थना की। प्रभो! हे सर्वशान्तिमान्! मेरे रोने का केवल एक ही कारण है। मैं आपका मन्द बालक हूँ। तीन दिन तीन रात मेरी कठोर परीक्षा के बाद आपने मुझे दर्शन दिये हैं। मैं तड़पता रहा चरणारविन्दों के दर्शन के लिए, किन्तु आपके चरणारविन्द में बहुत से स्त्री पुरुषों का जमघट होने के कारण मैं नहीं आ सका और आप दर्शन देने के लिए नहीं आये। आज मेरा यह शुभ दिन है। पता नहीं मेरे कौन से पुण्य प्रारब्ध से प्राणिमात्र के अन्तर्द्रष्टा श्री प्रभुजी ! आपने मुझे आकर कृतार्थ किया है। श्री प्रभुजी ने उस महात्मा को कुछ समय अपने पास रखकर हिमालय भेज दिया। जो लोग श्री प्रभुजी के साथ सन्तराम की सराय में गये थे, उनके आश्चर्य का तो कोई ठिकाना ही नहीं रहा। वह लोग भली प्रकार जान गये, इस विप्र वेष में छिपे यह अवश्य कोई सर्वसमर्थ महापुरुष हैं। यह पहली घटना थी जिससे कुछ सर्व साधारण लोग मेरे गुरुदेव के स्वरूप को कुछ–कुछ समझने लगे। यहाँ से ही शक्तिपात और सब प्रकार के योग प्रचार का कार्य प्रारम्भ हुआ। मेरे गुरुदेव ने इस बीच में क्या–क्या कार्य किया, वह शनैः–शनैः इस पत्र में प्रकाशित होता रहेगा जिससे पाठकगण समझते रहें कि सद्गुरुदेव कौन होता है और उनके कार्य किस प्रकार के हुआ करते हैं।

समाधि से तात्पर्य देहात्म बुद्धि से परे होना है। देह का आत्मा से तादात्म्य न होनापूर्व निश्चित है।

।। श्री रामलाल प्रभवे नमः ।।

दादा गुरुदेव

योगयोगेश्वर प्रभुश्री रामलाल जी महाराज

सम्पादकीय–

परम गुरुदेव श्री प्रभु रामलाल जी महाराज का पावन प्राकट्य दिवस

आचार्य (डा०) रामलाल शर्मा

ईश्वर सर्वव्यापक और अनादि है। वह सृष्टि का सर्वप्रथम गुरु है। योग दर्शन में पतञ्जलिदेव जी महाराज ने **'सः पूर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्'** कहकर ईश्वर को सृष्टि का प्रथम गुरु कहा है। तीनों काल में विद्यमान रहने के कारण उनकी सत्ता अविच्छिन्न रूप से विद्यमान रहती है। वही ईश्वर समय–समय पर सगुण रूप में आकर प्रकट होते हैं और भक्तों की रक्षा तथा दुष्टों का संहार करते हैं–जैसा कि भगवान ने गीता के चौथे अध्याय में घोषणा की है। योग रूपी धर्म की स्थापना समय–समय पर प्रकट होकर करते रहते हैं। ईश्वर की भांति महायोगियों का चरित्र भी अलौकिक होता है, उनके चरित्र व इतिहास को जानना असम्भव होता है। ऐसे योगी किसी भी स्थान पर, किसी भी समय प्रकट होकर अपना अभीष्ट कार्य किया करते हैं। उनका जन्म और कर्म मानुषी बुद्धि के द्वारा नहीं समझा जा सकता है। वे ईश्वर के तुल्य ही होते हैं। ऐसे ही एक महायोगी हुए हैं जो सृष्टि के अन्त तक हिमालय में अजर–अमर रहकर वास करते हैं तथा योग विधि से काय–निर्माण कर पृथ्वी पर आते रहते हैं जिनका परम पावन नाम महाप्रभु रामलाल है। वे एक ही समय में अनेक स्थानों पर काय–निर्माण से शरीर बनाकर योग विद्या के प्रचार–प्रसार के लिए प्रकट होते रहते हैं। ऐसे योगियों के काय–निर्माण से कार्य करने की बात उपनिषदों में वर्णित है।

''अचिन्त्य शक्तिमान योगी नाना रूपाणिधार येत्।'' अचिन्त्य शक्तियों से सम्पन्न योगी नाना रूपों तथा नाना नामों से रहकर अपना अभीष्ट कार्य करते रहते हैं। ऐसे योगी अपने भक्तों के अविद्यादि क्लेश रूप दुःख द्वन्द्वों को मिटा देते हैं। योग ध्यान की विधि द्वारा भक्तों को पूर्णतया योग मार्ग में लगाने के लिए तीव्र शक्तिपात कर कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर, योग के गूढ़ रहस्यों को प्रकट कर, उच्च भूमिकाओं में प्रवेश करा देते हैं। सम्प्रज्ञात तथा असम्प्रज्ञात समाधि का बोध करा देते हैं।

आनन्दकन्द प्रभुजी बीसवीं सदी के सिद्ध योगियों में मूर्धन्य स्थान रखते हैं। जन्म से ही उनकी योग शक्तियों का परिचय जन सामान्य को मिलने लगा था। मध्य युग में नाथ योगियों के चमत्कारिक विभूतियों से लोगों में योग विद्या के प्रति विश्वास एवं आकर्षण हो गया था। इस से धर्म एवं आध्यात्म के दिव्य ज्ञान का प्रचार किया गया। महायोगी मत्स्येन्द्रनाथ, शिवा योगी गोरक्ष नाथ, भर्तृहरि, गोपीचन्द एवं चौरासी सिद्धों के दिव्य चमत्कारों की गाथा भारत में फैली हुई है। वस्तुतः योग ही शाश्वत जीवन की प्राप्ति का मार्ग है। इसी से जीव अखण्ड शान्ति तथा जन्म मरण के क्रम को तोड़ सकता है।

श्री प्रभु रामलाल जी महाराज ने दिव्य शक्तिपात के द्वारा साधकों को योग की ऊँची–ऊँची भूमिकायें प्रदान की हैं। वहीं पर जन सामान्य के स्वास्थ्य एवं दीर्घायु के लिए दिव्य क्रियाओं को अपने मन से आविष्कार करके जीवन तत्व साधन के नाम से क्रियाओं का

प्रचार–प्रसार जन सामान्य में किया है। ये क्रियायें स्वास्थ्य के साथ–साथ नाड़ी शोधन द्वारा मन की एकाग्रता को भी प्रदान करने वाली हैं जिसे हर व्यक्ति कर सकता है यहाँ तक रोगी व्यक्ति भी उनका अभ्यास करके धीरे–धीरे पूर्ण स्वस्थ हो जाता है। रोगों की निवृत्ति के लिये ये रामबाण हैं। कालान्तर में रोगी भी योग ध्यान में प्रवृत्त हो जाया करते हैं। भारतभूमि में शक्तिपात द्वारा योग विद्या को आगे बढ़ाने वाली संस्थायें बहुत ही कम हैं। पूर्ण योगीराज सिद्ध ही शक्तिपात का सामर्थ्य रखता है।

महाप्रभु रामलाल जी महाराज कल्पान्त जीवी अजर अमर सिद्ध हैं। योग पृथ्वी से लुप्त प्राय: होता देखकर बीसवीं शत. दी में योग विद्या के अनेक रूपों से योग का प्रचार किया है। वे योग के साक्षात् स्वरूप हैं। उनके श्वास–.श्वास में योग की विभूतियाँ प्रकट होती हैं। वे सर्वसमर्थ हैं। **''कर्तुमकर्तुमन्यथा कर्तुम्''** की शक्ति वाले हैं। अर्थात् अपनी इच्छा से ही किसी वस्तु का निर्माण कर लें, क्षण में किसी को सिद्ध बना दें तथा उनके विपरीत चलने पर नीचे गिरा दें यह सब सामर्थ्य उनमें विद्यमान हैं। सिद्धों की इच्छा के अनुरूप ही प्रकृति चलती है। पातञ्जल दर्शन में योग विभूतियों पर भाष्य लिखते हुए भगवान् व्यास देव जी लिखते हैं कि योग सिद्ध योगियों की इच्छा के अनुसार प्रकृति उसी प्रकार से चलती है जिस प्रकार से सद्य: प्रसूत गौ अपने बछड़े के पीछे–पीछे चला करती है। श्री महाप्रभु जी ने कुछ दिन श्री सिद्ध गुफा में रहकर उस भूमि को पवित्र किया और उसे योग का हृदय बनाकर गये। इसकी रज योग विभूतियों से ओत–प्रोत है। सिद्ध पुरुष ही ऐसे योगियों के विषय में जान पाते हैं साधारण मनुष्य नहीं। उनके शिष्यों की लम्बी श्रृंखला में देवरहा बाबा प्रभृति अनेक सिद्ध हैं जो हिमालय की कन्दराओं में अजर अमर हैं। श्री योगी हरीहरानन्द जी महाराज को श्री प्रभु जी ने एक क्षण में तत्त्व विजयी सिद्ध बना दिया जो आज भी शीशगिरी पहाड़ी पर समाधिस्थ हैं, ऐसा हमारे गुरुदेव योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी हमें अपने श्री मुख से बतलाया करते थे।

श्री सिद्ध गुफा से ही अनुप्राणित होकर सैकड़ों योग शाखायें देश–विदेश में चल रही हैं। हमारे गुरुदेव योगिराज जी ने अपने शिष्यों के मन में श्री प्रभु जी के अप्रतिम योग प्रभाव को स्थापित किया है इसी कारण से उनके शिष्य प्रभुजी को सदा शिव स्वरूप मान कर उनकी पूजा व ध्यान करते हैं तथा सफल मनोरथ होते हैं।

आपका अवतरण पंजाब प्रान्त के अमृतसर शहर में स्वनाम धन्य ज्योतिर्विद पं. गण्डाराम जी के घर में सन् 1888 में श्री राम नवमी के पावन पर्व में हुआ। श्री माता जी का नाम भागवन्ती देवी हुआ। आप के जन्म कुण्डली को देखकर ही आप के महायोगी होने का प्रमाण मिल गया था। आप के पूर्वज भी बहुत शक्ति सम्पन्न महापुरुष हो चुके हैं जो अपने संकल्प मात्र से मृत बालक को जीवित कर देना, मन्त्रोच्चारण से ही अग्नि प्रज्वलित कर देना, वर्षा करा देना आदि अलौकिक शक्तियों से सम्पन्न थे। इसी दिव्य कुल में प्रभुजी का अवतरण हुआ था। शैशवावस्था में ही आपके कार्य बड़े अलौकिक थे। चौदह वर्ष की आयु में ही विद्याध्ययन के बहाने से घर से निकल पड़े थे। सर्वप्रथम आप कुरुक्षेत्र पहुँचे। विद्याध्ययन के समय ही आपके कई चमत्कार विद्यार्थियों ने देखे।

एक दिन दोपहर विश्राम के समय आप विश्राम कर रहे थे तभी एक नाग इनके सिर पर छाया किये खड़ा था। कुछ देर बाद स्वत: ही गायब हो गया। वहाँ से आप काशी जी चले गये। उस

समय में बहुत से तांत्रिक मान्त्रिकों से आप की टक्कर हुई। आपने सभी की शक्तियों को परास्त किया और कुरीतियों तथा व्यभिचार के केन्द्रों को नष्ट किया। सभी आप की यौगिक शक्तियों के सामने नतमस्तक हुए। कुछ वर्षों बाद आप श्री धाम वृन्दावन की ओर चले आये तथा घूमते–घूमते बरहन गाँव के लोगों पर कृपा बरसाते हुए संवाई गाँव पहुँच गये। यहाँ प्यारे लाल आदि आप के परम भक्त बन गये। आप के मुख से निकली वाणी अक्षरश: सत्य होती थी। आपके दिव्य सानिध्य को पाकर सभी कृतकृत्य हो गये। आप के निर्विघ्न समाधि की स्थिति के लिए उचित जगह के लिए ग्राम वासियों ने गुफा बना दी। वहाँ कुछ वर्ष श्री प्रभुजी रहे तत्पश्चात् एक दिन चुपके से प्रातःकाल ही गुफा के बन्द द्वार से अणिमा सिद्धि से निकल कर आकाश मार्ग से हिमालय की ओर चले गये। वहाँ नेपाल में अपने गुरुदेव श्री महाप्रभु सदाशिव के निकट कई वर्ष रहने के बाद उनकी आज्ञा से ही योग विद्या के प्रसार के लिए पुन: मैदानों में आ गये। आपने संस्कारी भक्तों को योग मार्ग का उपदेश दिया। अपने भक्तों के आध्यात्मिक उन्नति के लिए जीवन तत्त्व की साधना के उपयोगी क्रियाओं का अन्वेषण करके भक्तों के मध्य प्रकाशित किया। अमर तत्त्व, फल तत्त्व आदि विशेष साधनों का प्रचार किया। इन क्रियाओं द्वारा जठराग्नि दीप्ति के साथ–साथ कुण्डलिनी जागरण के लिए शक्ति संचार की प्राचीन यौगिक आर्ष परम्परा को अक्षुण्ण बनाया। आपने कई सिद्धयोगी बनाये जिसमें ब्र. गोपालानन्द जी महाराज, श्री योगी मुल्खराज जी महाराज, गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री योगी नृसिंह मूर्ति जी, माता द्रोपदी देवी एवं ऋषिदेवी जी प्रमुख हुये। इन महान योगियों ने अध्यात्म योग व ध्यान योग का उपदेश अपने शिष्यों को दिया। सबसे अधिक प्रचार करने वालों में गुरुदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का नाम सर्वोपरि आता है। आप सच्चे अर्थों में श्रोत्रीय एवं ब्रह्मनिष्ठ योगी हुए जिनके लाखों शिष्य ध्यानयोग में दीक्षित होकर आत्म कल्याण के पथ पर अग्रसर हैं। सदेह न होने पर आज भी अपने साधकों का अज्ञान तिमिर दूर कर रहे हैं। श्री प्रभु जी की परम्परा के साधक भ्रमित नहीं रहते हैं। योग के वास्तविक स्वरूप को जानने वाले होते हैं। योग में तर्क व विवाद का कोई स्थान नहीं है। ध्यान जन्य ऋतम्भरा प्रज्ञा व विवेक ख्याति ही जन्म मरण के चक्र को छुड़ा देने वाली होती हैं। ' सिद्धयोग ' की परम्परा में यद्यपि सिद्धगुरुदेव सब कुछ स्वयं करने वाले होते हैं तथापि निमित्त मात्र से क्रिया योग की साधना का निरन्तर अभ्यास करते रहने की आज्ञा हमारे सद्गुरुदेव योगिराज जी की आज्ञा रही है। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के लिए कल्पवृक्ष व कामधेनु के समान हैं सभी इच्छाओं को पूर्ण करने वाले हैं। साधक को चाहिए शुद्ध व निर्मल भाव से साधनारत रहे। श्री प्रभु जी अपने भक्तों के हृदय कमल पर सदा विराजमान रहते हैं। श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में इस वर्ष श्री राम नवमी पर्व योग महामेला के रूप में 8,9 व 10 अप्रैल को धूमधाम से मनाया जा रहा है। उनके प्राकट्य दिवस के पावन अवसर पर उनके चरण–कमलों में सभी भक्तों का कोटि–कोटि नमन है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

श्रीमद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

राजा निमि द्वारा पूछे गये सभी प्रश्न ज्ञान, भक्ति, योग से सम्बंध रखने वाले हैं। अब एकादश स्कंध के पाँचवें अध्याय में। आध्यात्म हीन पुरुषों की गति और भगवान की पूजा विधि का वर्णन आठवें और नवमें योगीश्वरों द्वारा किया गया है। राजा निमि ने पूछा– योगीश्वरों ! आप सभी आत्मज्ञानी और परमभक्त हैं। कृपा करके यह बतलाइये कि जिनकी भोग कामनायें शान्ति को प्राप्त नहीं हुई हैं, मन एवं इन्द्रियाँ वश में नहीं हैं, ऐसे भगवत् भजन हीन लोगों की क्या गति होती है ? आठवें योगीश्वर चमस जी ने कहा– चारों वर्णों तथा चारों आश्रमों के जन्मदाता स्वयं भगवान ही हैं। जो इन वर्णों एवं आश्रमों के धर्मों को पालन नहीं करता वह मनुष्य–योनि से च्युत होकर अधः पतन को प्राप्त होता है। मूर्ख लोग गुरु जनों की नहीं अपितु स्त्रियों की उपासना करते हैं। धन का एकमात्र फल है धर्म, क्योंकि धर्म से परमतत्व का ज्ञान और उसकी निष्ठा से परम शान्ति मिलती है। परन्तु लोग धन का उपयोग कामोपभोग में करते रहते हैं।

जो लोग आत्मज्ञान सम्पादन करके कैवल्य (मोक्ष) नहीं प्राप्त किये हैं परन्तु पूरे मूढ़ भी नहीं हैं। वे न इधर के हैं न उधर के। वे अर्थ, धर्म, काम के पँचड़े में फँसे रहते हैं। ऐसे लोगों को आत्मघाती कहते हैं।

ये कैवल्यमसम्प्राप्ता ये चातीताश्च मूढ़ताम्।
त्रैवर्गिका ह्यक्षणिका आत्मानं घातयन्ति ते।। 16।।

अ. 5, स्कं. 11

जो अन्तर्यामी प्रभु से विमुख हैं उन्हें विवश होकर घोर नर्क में जाना पड़ता है। राजा निमि ने पूछा – योगीश्वरों ! भगवान किस समय किस रंग का, और कौन सा आकार स्वीकार करते हैं, और मनुष्य उन्हें किन नामों और विधियों से उनकी उपासना करते हैं; कृपया यह सब मुझे बतलाइये !

नवें योगीश्वर करभाजन जी ने कहा– राजन ! चार युग हैं। सत्ययुग में भगवान का रंग श्वेत होता है। उनके चार भुजायें तथा सिर पर जटा होती है; वे वल्कल धारण करते हैं। सत्युग के मनुष्य शान्त, वैररहित, हितैषी और समदर्शी होते हैं। इन्द्रियों का निग्रह और मन को वश में रखकर ध्यानरूप तपस्या के द्वारा परमात्मा की उपासना करते हैं।

कृते शुक्लश्चतुर्बाहुर्जटिलो वल्कलाम्बर :।
कृष्णाजिनोपवीताक्षान् बिभ्रद् दण्ड कमण्डलू ।। 21।।
मनुष्यास्तु तदा शान्ता निर्वैराः सुहृदः समाः।
यजन्ति तपसा देवं शमेन च दमेन च ।। 22।।

वे लोग हंस, सुर्पण, वैकुण्ठ, धर्म, योगेश्वर, अमल, ईश्वर, पुरुष, अव्यक्त और परमात्मा आदि नामों द्वारा भगवान के गुण, लीला का गान करते हैं।

हंसः सुपर्णो वैकुण्ठो धर्मो योगेश्वरोऽमलः।
ईश्वरः पुरुषोऽव्यक्तः परमात्मेति गीयते।। 23।।

अ.5, स्कं. 11

त्रेता में भगवान का रंग होता है लाल। उस युग के मनुष्य अपने धर्म में बड़ी निष्ठा रखने वाले। वेदों के अध्ययन–अध्यापन में प्रवीण होते हैं। वे वेदत्रयी के द्वारा भगवान हरि की उपासना करते हैं।

द्वापर युग में भगवान का रंग साँवला होता है। पीताम्बर शंख, चक्र, गदा आदि आयुध धारण करते हैं। उस समय लोग भगवान की वैदिक एवं तान्त्रिक विधि से आराधना करते हैं। विश्वेश्वर, भगवान वासुदेव, नारायण, विश्वात्मा आदि नामों द्वारा उपासना करते हैं।

कलियुग में भगवान का रंग कृष्ण वर्ण का (काला) होता है। श्रेष्ठ पुरुष नाम, गुण और कीर्तन द्वारा उपासना करते हैं।

राजन ! सत्ययुग, त्रेता, और द्वापर की प्रजा चाहती है कि हमारा जन्म कलियुग में हो। क्योंकि कलियुग में कहीं–कहीं भगवान नारायण के शरणागत उन्हीं के आश्रय में रहने वाले बहुत से भक्त उत्पन्न होंगे। ये प्रेमी भक्त भगवान के अनन्यभाव भजन करते हैं। भगवान हरि उनके हृदय में बैठकर हृदय को शुद्ध कर देते हैं।

कृतादिषु प्रजा राजन् कलाविच्छन्ति सम्भवम्।
कलौ खलु भविष्यन्ति नारायण परायणाः।। 38।।

अ.5, स्कं. 11

नारद जी के मुख से नव नारायणों का उपदेश सुनकर श्री वसुदेव जी एवं भाग्यवती देवकी जी को बड़ा विस्मय हुआ। उनमें जो कुछ माया–मोह रह गया था उसे उन्होंने तत्काल छोड़ दिया। अब छठे अध्याय में, भगवान का स्वधाम गमन, यादवों का प्रभास क्षेत्र जाने की तैयारी तथा यह सब देखकर उद्धव जी का भगवान के पास आने का वृतान्त वर्णित किया गया है। जब नारद जी उपदेश देकर चले गये तब ब्रह्मा जी, शंकर जी और सभी देवता गण, ऋषि, गुह्यक आदि भगवान श्री कृष्ण के चित्ताकर्षक मानव विग्रह के दर्शनार्थ आये। वे एकटक भगवान की रूप–माधुरी का अपलक नयनों से पान करते रहे। उन्होंने तदन्तर दिव्यपुष्पों से जगदीश्वर कृष्ण को ढ़क दिया और वेद वाणी से स्तुति करने लगे। प्रभो ! आपकी आत्मस्वरूपिणी माया के जिज्ञासु योगीजन हृदय के अन्तर्देश में दहरविद्या आदि के द्वारा आपके चरणों का ही ध्यान करते हैं। आप ही उनके इष्ट आराध्य देव हैं। आपके ये ही चरण कमल हमारे पाप–तापों को भस्म कर दें।

यश्चिन्त्यते प्रयतपाणिभिरध्वराग्नौ,
त्रय्या निरुक्तविधिनेश हविर्गृहीत्वा।
अध्यात्मयोग उत योगिभिरात्ममायां,
जिज्ञासुभिः परमभागवतैः परीष्टः।।

–अ.6, स्कं. 11

प्रभो ! आप कालस्वरूप हैं। त्रिगुणातीत प्रकृत से परे है। आप पुरुषोत्तम हैं। आपके चरण कमल हम लोगों का कल्याण करें। इस प्रकार स्तुति कर ब्रह्माजी ने कहा– सर्वात्मन प्रभो ! पहले हम लोगों ने पृथ्वी का भार उतारने की प्रार्थना की थी। वह कार्य आपने पूरा कर दिया। प्रभो ! यदि आप उचित समझें तो अपने परमधाम में पधारिये।

भगवान श्री कृष्ण ने कहा– ब्रह्मा जी ! आप जैसा कहते हैं, वह मैं पहले से निश्चय कर चुका हूँ। यदुवंशियों का यह विशाल वंश नष्ट किये बिना चला जाऊँगा तो ये सभी मर्यादा का उलंघन करके लोकों का संहार कर डालेंगे। अतः इनका अन्त हो जाने पर मैं आपके धाम में होकर जाऊँगा। इसके बाद ब्रह्मा जी सहित सब देव अपने–अपने स्थान को गये। इधर द्वारिका में बड़े–बड़े अपशकुन और उत्पात् होने लगे। भगवान श्री कृष्ण ने सभी को बुलाकर कहा– ऋषियों के शाप से वंश का नाश होना ही है अतः अब विलम्ब किये बिना हम लोग पवित्र प्रभास क्षेत्र के लिये निकल पड़े। भगवान श्री कृष्ण की आज्ञा से सभी तैयारी करके प्रभास जाने को तत्पर हुये।

उस समय उद्धव जी श्रीकृष्ण के पास एकान्त में गये और हाथ जोड़कर कहा– योगेश्वर ! आप देवाधि देवों के भी अधीश्वर हैं। आप सर्वशक्तिमान परमेश्वर हैं। मैं यह समझ गया कि अब आप यदुवंश का संहार करके, इस लोक का परित्याग कर देंगे।

देवदेवेश योगेश पुण्यश्रवणकीर्तन।
संहृत्यैतत् कुलं नूनं लोकं सन्त्यक्ष्यते भवान्।
विप्रशापं समर्थोऽपि प्रत्यहन्न यदीश्वरः।। 42।।

अ.6, स्कं. 11

मेरे जीवन सर्वस्य ! आप मुझे भी अपने धाम में ले चलिये। महायोगेश्वर ! हम लोग तो भ्रम–भटकाव में जी रहे हैं। परन्तु हम आपके हैं। हम तो आपके जूठन खाने वाले सेवक हैं। आपके विरह की चिन्ता है –

वयं त्विह महायोगिन् भ्रमन्तः कर्मवर्त्मसु।
त्वद्वार्तया तरिष्यामस्तावकैर्दुस्तरं तमः।। 48।।

अ. 6, स्कं. 11

उद्धव की मनोदशा देख भगवान ने कहा– उद्धव ! तुमने जो कुछ कहा है, मैं वही करना चाहता हूँ। आज से सातवें दिन समुद्र इस द्वारिका पुरी को अपने में समाहित कर लेगा। मेरे द्वारा पृथ्वी का परित्याग करने के बाद दिनों दिन पृथ्वी पर कलियुग का बोलबाला हो जायेगा। लोगों की अधर्म में रुचि हो जायेगी। तुम आत्मीय बन्धु जनों का स्नेह छोड़ मुझ में मन लगाकर विचरण करो। उद्धव ! तुम अपनी समस्त इन्द्रियों को वश में कर, चित्त की समस्त वृत्तियों को रोक कर ऐसा अनुभव करो कि यह जगत अपने आत्मा में ही फैला हुआ है और आत्मा मुझ ब्रह्म से एक है, अभिन्न है।

तस्माद् युक्तेन्द्रियग्रामो युक्तचित्त इदं जगत्।
आत्मनीक्षस्व विततमात्मानं मय्यधीश्वरे।। 9।।

अ. 7, स्कं. 11

भगवान श्री कृष्ण के उपदेश को सुनकर उद्धव जी ने कहा – भगवान ! आप ही समस्त योगियों की गुप्त पूँजी योगों के कारण और योगेश्वर हैं। आप ही समस्त योगों के आधार, और योगस्वरूप भी हैं। आपने मेरे कल्याण हेतु सन्यास रूप त्याग का उपदेश किया है।

योगेश योगविन्यास योगात्मन् योगसम्भव।
निः श्रेयसाय मे प्रोक्तस्त्यागः संन्यासलक्षणः।। 14।।

अ.7, स्कं. 11

प्रभो ! मुझ जैसे विषयात्मा द्वारा कामनाओं का त्याग अत्यन्त कठिन है। अतः मुझे इस प्रकार समझाइये कि मैं सुगमता पूर्वक उसका साधन कर सकूँ। आप एक रस सत्य हैं। आप ही मुझे अपने उपदेश से प्रबोधित कर सकने में पूर्ण समर्थ हैं। भगवान श्री कृष्ण ने कहा– उद्धव ! जो मनुष्य यह जगत क्या है ? इसमें क्या हो रहा है ? इन बातों पर विचार करने में दक्ष हैं, वे अपने चित्त में भरी अशुभ वासनाओं से अपने आप ही विवेक शक्ति से बचा लेते हैं। आत्मा ही अपने हित और अहित का उपदेशक गुरु है। सांख्य योग विशारद धीर पुरुष इन्द्रियशक्ति, मनः शक्ति आदि के आश्रय भूत मुझ को पूर्णतः साक्षात्कार कर लेते हैं।

पुरुषत्वे च मां धीराः सांख्ययोगविशारदाः।
आविस्तरां प्रपश्यन्ति सर्वशक्त्युपबृंहितम्।। 21।।

उद्धव ! मनुष्य–शरीर में एकाग्रचित्त तीक्ष्ण बुद्धि पुरुष मुझ ईश्वर को साक्षात् अनुभव करते हैं। इस संदर्भ में एक कथा अवधूत दत्तात्रेय और राजा यदु के संवाद के रूप में है। एक बार राजा यदु ने त्रिकाल दर्शी तरुण अवधूत को देखा। उनसे यह प्रश्न किया– आप कर्म तो करते नहीं परन्तु आपको अत्यन्त निपुण बुद्धि कहाँ से प्राप्त हुई ? आपकी वाणी से अमृत टपक रहा है , फिर भी आप जड़, उन्मत्त के समान रहते हैं। आप सांसारिक बन्धनों से मुक्त अपने केवल स्वरूप में ही रहते हैं। आप अपनी आत्मा में ही अनिर्वचनीय आनन्द में मग्न हैं। प्रभो ! यह आपको कैसे प्राप्त हुआ ? कृपया बतलाइये।

ब्रह्मवेत्ता दत्तात्रेयजी ने कहा– मैंने राजन ! अपनी बुद्धि से बहुत से गुरुओं का आश्रय लिया है, उनसे शिक्षा ग्रहण करके मैं जीवन–मुक्त हुआ हूँ। मैंने चौबीस गुरुओं का आश्रय लिया है। जिससे मैं जिस प्रकार सीखा हूँ, वह सब तुमसे कहता हूँ।

मैंने पृथ्वी से धैर्य, क्षमा की शिक्षा ली है। धीर पुरुष को चाहिए कि वह अपना धीरज न खोवे और न क्रोध करे।

मैंने शरीर के भीतर रहने वाले प्राण वायु से यह सीखा है कि वह आहार मात्र की इच्छा रखता है, उसकी प्राप्ती से संतुष्ट हो जाता है। साधक को उतना ही आहार ग्रहण करना चाहिए कि जिससे इन्द्रियाँ, मन और बुद्धि चंचल न हो। वायु का गुण गन्ध नहीं है अपितु यह पृथ्वी का है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

आत्म–अनात्म विवेक एवं योग

आचार्य डॉ. रामलाल जी महाराज

संसार में दो मुख्य वस्तुयें हैं, जड़ और चेतन इन दोनों का संयोग ही संसार है और इनका वियोग या पृथक्करण ही मोक्ष है। वेदान्त शास्त्र में आत्म–अनात्म विवेक पर ही जोर दिया गया है। आत्म लाभकारी वस्तुओं का ग्रहण और अनात्म का त्याग ही साधक की दृष्टि रहती है। वह जगत में साक्षी भाव से रहने की कोशिश करता है।

वेदान्त अनुसार दृश्यमान जगत मिथ्या है, माया है अतः इसे विवर्त की संज्ञा दी है। विवर्त का मतलब है भ्रम। जैसे रस्सी में सर्प का भ्रम होता है, योग शास्त्र में इसे विपर्यय कहते हैं–

" विपर्ययो मिथ्याज्ञानमतद्रूप प्रतिष्ठम् "

जैसा दिखाई दे रहा है वह वैसा नहीं है इसे ही विपर्यय कहते हैं यह एक वृत्ति है इसे भी दूर करना है। योग दर्शन में पाँच प्रकार की वृत्तियाँ मानी गई हैं। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति पाँच प्रकार की वृत्तियाँ हैं जो क्लिष्ट और अक्लिष्ट दो प्रकार की होती हैं। वेदान्त " ब्रह्म सत्यम् जगन्मिथ्या " को मानता है अर्थात् जगत ही ब्रह्म ही सत्य है और सब मिथ्या है इसलिए मिथ्यात्व के भाव को सदा बनाये रखना साधक का कार्य होता है। गीता में भी भगवान ने संसार को अशाश्वत तथा दुःखालय बताया है अतः इसे भी स्वप्नवत ही माना गया है। रामचरितमानस में सन्त शिरोमणि तुलसीदास जी भगवान् के मुख से कहलाते हैं। " उमा कहूँ मैं अनुभव अपना। सतहरि भजन जगत सब सपना। " यह जगत मिथ्या है स्वप्न है अतः भक्त को भगवान का भजन व आराधना करनी चाहिए। सभी सन्त एवं शास्त्र इस बात पर एकमत हैं कि संसार अनित्य है। विद्वान वही है जो दुःखों की निवृत्ति के लिये उपाय ढूंढे और दुःख को हमेशा के लिये दूर करने का प्रयत्न करे। तीव्र जिज्ञासा अध्यात्म मार्ग में, अत्यन्त आवश्यक है **' अथातो ब्रह्म जिज्ञासा '** ब्रह्म सूत्र का प्रथम मंत्र है। योग शास्त्र में दो प्रकार की वृत्ति मानी गई है एक है अक्लिष्ट वृत्ति तथा दूसरी क्लिष्ट वृत्ति। अक्लिष्ट वृत्ति योगसाधना के लिए सहायक वृत्ति है जबकि क्लिष्ट तो दुःख ही देती है। योग साधक भी जगत को मिथ्या जानकर ही ध्यान के द्वारा अक्लिष्ट वृत्ति का उत्सृजन करता है और क्लिष्ट वृत्ति का शमन करता है। उच्छेदन करता है। इन दोनों वृत्तियों में द्वन्द्व चलता रहता है। साधक यदि सतोगुणी है तो वह इस द्वन्द्व में जीत जाता है और रजोगुण, तमोगुण का चित्त में आधिक्य है तो वह हार कर पतन की ओर बह जाता है।

वेदान्त का प्रसिद्ध ग्रन्थ विवेक चूडामणि में भगवान् शंकराचार्य जी लिखते हैं –

आत्मानात्म विवेकः कर्तव्यो बन्ध भुक्तये विदुषा।

तेनैवानन्दी भवति स्वं विज्ञाय सच्चिदानन्दम्।

अर्थात् साधक को अपने बन्धन से मुक्ति के लिये आत्म–अनात्म का विवेक या विचार करना चाहिए। इसी विवेक से साधक अपने सच्चिदानन्द रूप को जानकर परमानन्द को पा जाता है। जड़–चेतन का विवेक ही विचार कहलाता है। विवेक का अर्थ होता है जड़ और चेतन को पृथक–पृथक करना। विविक्त करना अलग करना। यही विवेक कहलाता है। विवेक भी एक प्रकार से धारणा ही है। योग–दर्शन में धारणा की परिभाषा एक सूत्र में की है–

' देशबन्ध चित्तस्य धारणा ' अर्थात् अपने चित्त को किसी एक स्थान पर केन्द्रित करने को धारणा कहते हैं। धारणा का स्थान मूलाधार चक्र, नाभिचक्र या आज्ञा चक्र आदि गुरुपदेश से समझना चाहिए। दृढ़तर अभ्यास से कई वर्षों में ध्यान और समाधि की स्थिति को योगी प्राप्त कर लेता है।

आज के इस भौतिकवादी समय में व्यक्ति अध्यात्म की बातों को व्यर्थ समझता है और इस ओर प्रवृत्ति ही नहीं होती है।

' मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये '

अर्थात् हजारों मनुष्यों में कोई एक ही अपनी मुक्ति के लिये प्रयत्न करता है।

योग आत्म–साक्षात्कार का एक मात्र साधन है योग की पूर्णावस्था में योगी अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है आत्म साक्षात्कार कर लेता है। इसे ही केवली भाव कहते हैं और यही अद्वैत कहलाता है। तभी योगी जन्म मरण के क्रम से मुक्त हो जाता है और अमर या अभय पद को पा जाता है। अतः साधक को वेदान्त का ज्ञान और योग की क्रिया योग का समन्वय करके आगे बढ़ना चाहिए।

परम पुरुष का दर्शन

अग्नि को प्रकट करने के लिए जैसे दो अरणियों का मन्थन किया जाता है, उसी प्रकार अपने शरीर में परम पुरुष परमात्मा को प्राप्त करने के लिये शरीर को तो नीचे की अरणि बनाना चाहिये और ॐकार को ऊपर की अरणि। अर्थात शरीर को नीचे की अरणि की भाँति समभाव से निश्चल स्थित करके ऊपर की अरणि की भाँति ॐकार का वाणी द्वारा जप और मन से उसके अर्थ स्वरूप परमात्मा का निरन्तर चिन्तन करना चाहिये। इस प्रकार इस ध्यान रूप मन्थन के अभ्यास से साधक को काष्ठ में छिपी हुई अग्नि की भाँति अपने हृदय में छिपे हुए परम देव परमेश्वर को देख लेना–प्रत्यक्ष कर लेना चाहिये।

–श्वेताश्वतरोपनिषद्

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

हमारे श्री प्रभु जी कौन हैं

जगदीश राए बंसल " अग्रम ", मो. 9212434003

लौकिक दृष्टि से आपका आविर्भाव एक पैगाम्बर बन कर महर्षि काक भुशंडि जी महाराज की भविष्य वाणी के अनुसार पंजाब प्रान्त की पावन गुरु नगरी अमृतसर में विक्रमी सम्वत 1945 चैत्र शुक्ल नवमी (रामनवमी) बार गुरुवार तद्नुसार 22 मार्च 1888 को मुदगिल गोत्र के राज ज्योतिषी पिता पं. गंडाराम जी के घर पुज्या माता श्री भागवन्ति के उदर से हुआ। आपके ज्योतिष प्रकाण्ड पिता ने राम नवमी को जन्म के कारण आपका शुभ नाम रामलाल रखा।

अष्ट सिद्धियों और नव निधियों पर आपका जन्म जात अधिकार था। शैशवावस्था में ही आपने एक मृत बालक को जीवन दान एवं पड़ोस की एक मरणासन्न वृद्धा के मस्तक पर अपना पवित्र चरण स्पृश्य कर उसे सद्‌गति प्रदान की। पाँच वर्ष की आयु में आप पाठशाला में प्रविष्ट हुए। मगर जिसके स्वासों में ही वेद समाये हों, उसे कोई क्या पढ़ाएगा ? आप गुरुकुल में कम रहते थे, सन्त महात्माओं के पास अधिक जाते थे। पन्द्रह वर्ष की आयु में एक बार आप के कुरुक्षेत्र पाठशाला में अध्ययन के विश्राम काल में एक नागिन को फन फैलाएँ आपकी रक्षा करते देख कर सब आश्चर्य चकित रह गए। पिता श्री ने आप में वैरागी भाव देख कर आपको विवाह सूत्र में बान्ध दिया। मगर आपके स्वाभाविक कर्म में कोई परिवर्तन नहीं हुआ और खुमारी ज्यों की त्यों चढ़ी रही। 20–22 वर्ष की आयु में आप मथुरा, वृन्दावन आदि तीर्थ यात्रा करते–करते हिमालय पर जा कर तपस्या करने लगे।

लगभग सन् 1910 की एक घटना है कि हिमालय तिब्बत सीमा पर एक सिद्धाश्रम पर आप समाधिस्थ रहते थे। वहीं पर देवाधिदेव महादेव भी ऋषि रूप में समाधिस्थ रहते थे। उनकी समाधि छः माह में टूटती थी। एक बार जब वे समाधि से उठे तो उन्होंने आप से कहा– कि मनमहेश पर्वत पर लगभग दो सौ साल से तपस्यारत एक महात्मा की अपना वृद्ध शरीर त्यागने की इच्छा है। उन्होंने हमको दर्शनार्थ स्मरण किया है, अतः वहाँ जाना है। अब दोनों महाराज जी आकाश मार्ग से उक्त गन्तव्य की ओर चले। सिद्धाश्रम के महात्मागण आकाश गमन में दक्ष होते हैं। वहाँ पहुँच कर अनन्त तेजोपुंज महादेव जी ने उस महात्मा से अपना शरीर छोड़ने का कारण जानना चाहा तो वृद्ध महात्मा जी बोले कि यह शरीर जीर्ण हो चला है, इसलिए त्यागना चाहता हूँ। सिद्धलोकाधिपती जी ने पूछा कि महात्मन, क्या तुमने समस्त प्रारब्ध कर्मों को क्षय कर लिया है ? महात्मा जी ने कहा कि हे सर्वेश्वर– मैं तो यही समझता हूँ। तद्उपरान्त जटाधारी जी ने महात्मा जी को आज्ञा दी कि आप समाधि में अपने पिछले संचित कर्मों को देखें। महात्मा जी ने समाधि में अपने 107 वें जन्म के एक संस्कार को पड़े देखा। हुआ यूं कि उस जन्म में श्रीमान जी के हाथ से अंगारों से भरा एक पात्र छूटकर बिल्ली के बच्चों पर गिर पड़ा और बिल्ली की तीन सन्तानों का अन्त हो गया। अब महात्मा जी समाधि से उठ कर आशुतोष

भगवान के श्री चरणों में गिर गए, बहुत पश्चाताप किया। देवाधिदेव पुनः बोले कि अब आप ।।। वे जन्म में देखिए। महात्मा जी पुनः समाधि लीन हुए– देखते हैं कि उनके द्वारा एक विशाल यज्ञ सम्पन्न हुआ है, जिसका फल भोगना शेष है। अतः मंगलमूर्ति पूज्य पाद जी ने आदेश दिया कि अभी शरीर त्यागना उचित नहीं है, अन्यथा पुनर्जन्म हो जाएगा....। भुक्ति–मुक्ति दाता जी ने उस वृद्ध महात्मा के सिर पर अपना वरदहस्त रख कर उसके जीर्ण शरीर को युवावस्था में परिवर्तीत कर दिया और आशीर्वादों की झोली भर कर लौट आए।

यूँ हुआ प्रभु जी का पदार्पण इस धरा धाम पर

जैसे ही त्रयलोक पावन लीलाधारी सदाशिव भगवान एवं हमारे दादा गुरु अखण्ड ज्योति प्रभु श्री रामलाल जी महाराज अपने सिद्धाश्रम पर लौट कर आए, तो क्षेत्र के महर्षियों ने अपनी–अपनी जटाओं के बालों से पुष्प मालाएँ बना–बना कर दोनों आदि योगेश्वरों का जोशीला स्वागत व गुणगान किया। पश्चात समस्त महऋषियों ने एक स्वर से करबद्ध प्रार्थना की कि " हे प्रभो पृथ्वी लोक पर लाखों प्राणी, जो यथार्थ में जिज्ञासु एवं सुपात्र हैं, सच्चे सद्गुरु के अभाव में, भगवत प्राप्ती की खोज में भटक रहे हैं, तड़फ रहे हैं। भगवान श्री कृष्ण द्वारा प्रदान योग विद्यालुप्त प्रायः हो चुकी है। अतः कृपा करके आप किसी सद्गुरु तत्व से सम्पन्न योगेश्वर को भू मण्डल पर उतार कर पुनः योग की स्थापना– सदाचार्यों का उद्धार– धर्म न्याय और अहिंसा आदि सद्मार्ग दिखलाने की कृपा करें।"

आशुतोष भगवान देवाधिदेव महादेव ने महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज की ओर संकेत करते हुए कहा कि " यह हमारा ही हृदयांश रूप है। ये एक साथ लाखों जीवों को शक्तिपात द्वारा मोक्ष प्रदान कर सकते हैं। " सर्व व्यापी भगवान सदाशिव ने श्री प्रभु जी को आज्ञा प्रदान की कि तुम भू–लोक पर जा कर अपने संस्कारी व तिलमिलाते पिपासुओं का सन्ताप हरने के लिए योग विद्या प्रदान करो। मगर यह कार्य आप एक शरीर से नहीं कर सकते अतः तुम्हें काया निर्माण सिद्धि द्वारा एक साथ कई शरीर धारण करने पड़ेगे। " भगवान सदाशिव की आज्ञा पाकर देदीप्यमान महा प्रभु श्री राम लाल जी महाराज ने अपने मूल शरीर को वहीं सिद्ध आश्रम पर तपस्यारत रखते हुए काया व्यूह महासिद्धि द्वारा एक साथ सोलह शरीरों का निर्माण किया। जिन्होंने विभिन्न नामों से विभिन्न स्थानों पर अवतरित हो कर जिज्ञासुओं को योग विद्या का ज्ञान दिया एवं प्रचार प्रसार किया। हमारे दादा गुरुदेव लीलाधारी महाप्रभु श्री राम लाल जी महाराज का शरीर उन्हीं सोलह शरीरों में से एक है।

संवाई आगमन – आप लगभग सन् 1911 में संवाई पधारे। संवाई पदार्पण के विषय में कई विवरण कहे गए हैं। उनमें से एक विवरण संवाई गांव से एक डेढ़ कि.मी. लगते पड़ौसी गांव मंगलपुर निवासी आदरणीय गुरु भाई श्री भवानी शंकर शर्मा ने बतलाया कि मेरे पिता स्व. श्री रामस्वरूप शर्मा का आश्रम वाले स्थान बबूल आदि के जंगल की तरफ से बराबर आना–जाना होता था। उन्होंने बताया था कि एक बार संवाई गांव के धीमर परिवार का एक लड़का अपनी भैंसों को चराने इधर लाया हुआ था। एक भैंस चरते–चरते इस जंगल में घुस गई। वह लड़का भैंस की खोज में जंगल के अन्दर तक आ गया। यकायक उसका पैर एक पत्थर पर पड़ा तो कुछ हलचल सी हुई जैसे पत्थर किसी खोखले स्थान का आभास करा रहा है, साथ ही प्रिय

स्वर भी जंगल के सन्नाटे को तोड़ रहे हैं। वह लड़का वहीं रुक गया। उसने बड़े साहस और संघर्ष के साथ उस पत्थर को एक तरफ से उठा कर देखा तो चकित रह गया। क्या देखता है कि गहरे गड्ढे में एक दिव्य ज्योति जगमगा रही है। ज्योति की चान्दनी में एक जहाजूट गर्दन दिखाई दे रही है, शेष शरीर भूमिगत है। उसे समझते देर न लगी कि कोई महान तपस्वी बाबा जी तपस्या लीन हैं। इसी उहा पोह में एक नाग देवता ने फूंकार भरी। लड़का घबरा गया परिणामत: पत्थर हाथ से छूट कर धड़ाम से यथावत स्थान पर जा गिरा। लड़का किंकर्तव्य विमूढ़ सा हो गया। जब वह कुछ संभला तो संयोग वश उसमें श्रद्धा का अंकूर फूट पड़ा। किसी ने सच ही कहा है कि –

जर्रे–जर्रे में है झाँकी भगवान की।

किसी सूक्ष्म वाली आँख ने पहचान की।।

किसी विलक्षण शक्ति से प्रभावित लड़का नत मस्तक हो गया और स्वत: करुणामय शब्द फूट पड़े कि " हे तपस्वी बाबा महाराज आप अज्ञात वास तपस्या में लीन हैं और नाग राज आपकी रक्षा में हैं.....। मैं भी आपकी सेवा तल्लीनता से करूँगा.... आपके एकान्त को गुप्त ही रखूंगा.... आप मुझे सेवा का आशीर्वाद देने की कृपा करें.....मेरी यह कर्म भूमि ही परलोक की खेती है।

यह विचित्र घटना उस भाग्यशाली लड़के के किसी पूर्वकृत शुभ कर्मो का ही प्रतिफल कहिए या उस तपस्वी बाबा महाराज की अनुकम्पा। परिणामत: वह लड़का रात्रि में एक हाथ जलती लालटेन और दूसरे हाथ में झाडू लेकर उस तप स्थली (अब श्री सिद्धगुफा) पर जाता और सफाई करके लौट आता। बाबा जी महाराज ने उसको मना किया मगर उस तेजस्वी लड़के ने हठ किया बोला, चाहे सूर्य अपनी गरिमा छोड़ दें, चन्दा शीतलता छोड़ दें, सागर सीमाऐं लाँघ दें, पानी से घी निकल जाए, आकाश में वृक्ष उग जाएं....मगर बाबा महाराज मैं आऊँगा, आप दया कीजिए; मेरी प्रार्थना स्वीकार कीजिए.....। बाबाओं–तपस्वीयों का मन तो माखन सा कोमल होता है अत: महाराज जी खुश हो गए। अब बाबा जी और उस लड़के में प्रगाढ़ प्रेम उमड़ पड़ा।

समय की गति से लड़का विवाह सूत्र में बन्ध गया और प्रथानुसार दुल्हन रानी ने घर की शोभा आन बढ़ाई। मगर वह लड़का चट्टान की तरह अडिग अपनी प्रतिज्ञा निभाता रहा। लेकिन बहू रानी उसके इस कृत से बेचैन हो उठी। अन्तत: एक दिन उसके सबर का बान्ध टूट गया और उसने अपनी व्यथा सासु माँ के सामने उगल दी। सासु माँ यह सुनकर अवाक रह गई, काटो तो खून नहीं। उसने तुरन्त ज्यों की त्यों अपने पति देव से कह डाली। बेचैन पति ने एक योजना बनाई। तदनुसार उसी रात्री स्वयं को छिपाते, दबे पैर, बेटे के पीछे–पीछे चला। बेटा तो बाबा के बाग में घुस गया मगर पिता को कोई अज्ञात भयावह डायन खाए जा रही थी। अत: उसने पहचान के लिए अपना गमछा एक वृक्ष की शाखा से बान्ध दिया और पुत्र के लौटने से पहले आ कर अपने बिस्तर पर लेट गया।

प्रात: सूर्य की सुनहरी आभा के साथ पिता ने कुछ सम्भ्रान्त मित्र एकत्रित किए। इस मित्र मण्डल में मेरे पिता जी स्व. श्री राम स्वरूप शर्मा भी शामिल थे। सहमतिनुसार पुत्र को

आगे करके इस रहस्य से पर्दा उठाने के लिए, सभी ने बाबा जी के बाग में कदम बढ़ाए। उक्त स्थल पर पहुँच कर उन्होंने शनैः–शनैः वह पत्थर हटाया और अपनी सरस वाणी से बाबा जी महाराज को अनुनय विनय किया कि हे तपस्वी बाबा जी महाराज गड्डे से बाहर आईए....हमें दर्शन दीजिए... हम आप के शरणागत हैं ....कृपा कीजिए.... आदि। उधर घबराया लड़का पश्चाताप की अग्नि में जल रहा था कि–

नजरें मिलाऊँ भी तो कैसे, कर वादा खिलाफी को।

ये बीस आ गए बाबा मुझे अगवा करने को।।

पिताः–

तूं कितना जहर उगल ले बेटा, सारा पी जाऊँगा।

मैं बाप हूँ ना बेटा तेरी हर बात सह जाऊँगा।।

आश्चर्य ! घोर आश्चर्य ! बाबा जी अचानक पक्षी की भाँति आकाश में उड़ चले। उनके शरीर से प्रकाश की दिव्य किरणें निकल रही थी। वह लड़का बा....बा....बाबा चिल्लाता पीछे–पीछे दौड़ा। उसे नही पता था कि जंगल की इस उबड़–खाबड़ भूमि पर उसके पैर कहाँ पड़ रहे हैं। परिणामतः एक जगह अपना सन्तुलन खो कर, धड़ाम से भूमि पर गिर पड़ा। उपस्थित भद्रजनों ने लड़के को तुरन्त उठाया। अरे– यह क्या ? यह तो अचेत हो गया। हाय रे.. सांस भी नहीं चल रही.... क्या हुआ.... क्या यह मर गया ! नहीं, नहीं.. ऐसा हुआ तो अनर्थ हो जाएगा।

अब क्या किया जाये ? कोई कुछ कहता– कोई कुछ कहता। एक ने कहा कि उस उद्दैल बाबा को ही पुकारो, जिसके कारण यह नाश हुआ है। सभी ने बाबा जी को पुकारा कि हे तपस्वी बाबा त्राही माम–त्राही माम, यह कच्ची उम्र का बच्चा है, ताजी–ताजी शादी हुई है, आपके श्री चरणों का भ्रमर है, यह आपका अपराधी नहीं है, हमारे दबाव में यहाँ आया था, हम अपराधी हैं, आपके दर्शन को आए थे। दया करो बाबा इसके प्राण लौटा दो वरना हमको भी मार दो... इत्यादि।

आश्चर्य – महान आश्चर्य, एक जटाधारी–श्वेताम्बर बाबा जी वहाँ प्रकट हुए और ओजस्वी वाणी से बोले– क्यों रे बच्चा, क्यों सो रहा है ? उठ जा, फिर उसके कान में कुछ कह कर अर्न्तध्यान हो गए। वह लड़का झटपट उठ गया। अब बाबा जी महाराज प्रत्यक्ष दर्शन देने लगे। कभी जटा धारी रूप में, कभी शिव रूप में, कभी कृष्ण रूप में और कभी किसी रूप में। किसी–किसी को यहाँ की झाड़ियाँ गोपी रूप में, किसी को मोर–मोरनी, किसी को बछड़े व गाय रूप में दिखने लगे। एक दिन एक भक्त भौर से पहले बाबा के दर्शन करने आया था तो नागेन्द्रहारी भगवान को सर्पो से खेलता देख कर घबरा गया। तभी भव भयहारी जी ने आवाज लगाई कि भक्त इतना जल्दी मत आया कर, अपने हर रोज के समय पर आना। अब शर्मा जी तो स्वगृह लौट गए मगर चर्चा का दौर जिज्ञासु द्वारा चलता रहा।

बताया गया कि अब भक्तों का तांता लगने लगा। बाबा ने जीवन तत्व साधन, प्राणायाम, नेति आदि षटकर्म कराने प्रारम्भ कर दिए, रोगी निरोगता को प्राप्त हुए। संसारी कार्य

सधने लगे। सवाई के भक्त जोहरी सिंह को चवन्नी देकर उसका व्यापार चमकाया था जो मालामाल हो गया। ठाकुर दास की तीन पत्नियाँ मर चुकी थी। वह सन्तान के लिए रोया तो बाबा के आशीर्वाद से चौथी पत्नी से चार बच्चे हुए। पं. रामधन जो मन्दबुद्धि था, बाबा की कृपा से विद्वान कहलाया। बाबू सिंह दरिद्र की लड़की की शादी थी, उसने सोचा कहीं भाग जाऊँ या मर जाऊँ, चलो बाबा के दर्शन करता चलूं। बाबा के चरणों में आसुओं की झड़ी लग गई, बाबा ने उसे अपनी चरण पादुकाएँ दे कर कहा– इनको कोठे (कमरे) में रख दें जो मांगेगा मिलता रहेगा। उसकी लड़की की शादी बड़े ठाठ से सम्पन्न हुई। एक अन्धी बाला बाबा के पास रोई तो बाबा ने पुष्प प्रसाद दे कर कहा इसे पानी में डाल कर आँखें धो लेना। चमत्कार ! उसकी दृष्टि लौट आई। भक्त भगवान सिंह की ट्रेन छुटने वाली थी, वह स्टेशन से 40 कि.मि. की दूरी पर था, उसने श्री प्रभु जी को रटा तो आकाश वाणी हुई कि भगवान सिंह कदम बढ़ा। उसे नहीं पता कैसे क्या हुआ मगर उसने शीघ्र ही स्वयं को स्टेशन पर पाया।

सत्यम्–शिवम्–सुन्दरम् श्री प्रभु जी महाराज ने इस धरा धाम पर जो जो कृपा लीलाएँ की, उनको शेष नाग भी बयान नहीं कर सकता। सिद्ध योग परम्परा चालू करना, धोति–नेति आदि षटकर्म कराना, तत्व विजयी एवं अजर अमर बनाना, गुफा रज में तीव्र शक्तिपात करना, मृत शरीर में प्राण संचार करना, कुण्डलिनी जाग्रत करना, जीवन तत्व साधन कराना, एक ही समय विभिन्न स्थानों पर कार्यरत रहना, ताला बन्द गुफा से बाहर आना, देवराह बाबा को खेचरी सिद्ध कराना, व्यभिचारिणी राम रति को माँ दुर्गा का दर्जा देना, गया में भैरव चक्र नष्ट करना, इत्यादि अनेकानेक विलक्षण लीलाएँ की हैं।

लौकिक दृष्टि से महाप्रभु भगवान सदाशिव महाराज के आदेशानुसार अपने 31 जुलाई 1938 बसन्त पंचमी को अपने प्राण कोष खींच कर आपने निर्माण काय भौतिक शरीर का त्याग किया। यथार्थ में आप आज भी अपने मूल योगिक शरीर से हिमगिरी की नेपाली कन्दराओं में समाधिस्थ हैं। जब–जब कोई साधक आपको आर्त पुकार लगाता है, तब–तब आप अपने संकल्प से प्रकट हो कर दुखी जनों के कष्टों का निर्वाण करते रहते हैं।

अड़सठ तीर्थ आपके चरणों में।
हे आशुतोष प्रणाम आपके चरणों में।।

ऐसे दया मूर्ति श्री महाप्रभु जी वास्तव में कौन हैं ?

इस विषय में हमारे आदरणीय वरिष्ठ गुरु भाई श्री विजय सिंह जी चन्दु काका के चरमें से एक तात्विक बात बतलाते हैं कि गंगा दशहरा 1989 सम्पन्न होने के अगले दिन महासिद्ध गुरुदेव भगवान ने अवतारों की चर्चा करते हुए बतलाया कि " अखिलात्मा भगवान श्री कृष्ण पूर्ण कलाकार हैं। श्री महा प्रभु जी कहते थे कि श्रीकृष्ण सा योगी पृथ्वी पर भूतो न भविष्यति न भूत में हुआ और न भविष्य में होगा। " एक जिज्ञासु भाई ने पूछा कि हमारे महाप्रभु जी भी नहीं ? श्री गुरुदेव भगवान ने कहा – " श्री प्रभु जी राम–कृष्ण बनाने वाले हैं। भागवत के दसम् स्कन्ध के अन्तिम अध्याय में राम–कृष्ण बनाने वाले अदिनारायण भूमा पुरुष का वर्णन है। वे शुद्ध ब्रह्म हैं।

वही हमारे महा प्रभु जी हैं" ऐसे तरण–तारण, भव भय हारी, मंगल मूर्ति बहु मुखी, बहुभुजा धारी श्री प्रभु जी के श्री चरणों में कोटिशः दण्डवत् प्रणाम्....प्रणाम्.....प्रणाम्।

बिना नौका के ही तैरा दे-मेरा माँझी है कैसा अनोखा,

ना छोड़ो इसका दामन-अब पाके ऐसा मौका।

सिद्धयोग का मार्ग

सिद्धयोग का मार्ग बड़ा विलक्षण है। उसमें आह भरने की फुरसत नहीं न शिकवा करने की गुञ्जाइश। यह मार्ग विहङ्गम मार्ग है। इसमें उड़ने को निर्बाध आकाश मिल जाता है। उड़ने के लिए पंख मजबूत होने चाहिए फिर कुछ भी मुश्किल नहीं। श्री गुरुदेव का ध्यान करने से रोग ठीक हो जाते हैं। पर श्री सद्गुरुदेव की सही धारणा प्रत्येक व्यक्ति के वश की बात नहीं। इसके लिये हनुमान जी जैसा हृदय चाहिए। जो हृदय फाड़कर श्रीराम को दिखा सके। यदि श्री गुरुदेव में हनुमान जैसी अनन्य निष्ठा हो तो ध्यानमूल गुरोर्मूर्तिः यह सिद्धानत सबसे सरल है। स्थूल, सूक्ष्म, कारण तथा तुरीय सभी शरीरों का ध्यान करना आना चाहिए।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

चित्तवृत्तियाँ

श्री डॉ. कृष्णकान्त शर्मा

योग का लक्षण प्रस्तुत करते हुए महर्षि पतंजलि ने कहा है – ' योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः', अर्थात् चित्तवृत्तियों का निरोध ही योग है। वाक्यार्थ ज्ञान के प्रति पदार्थ ज्ञान कारण होता है, अतः 'चित्तस्य वृत्तयः= चित्तवृत्तयः, तासां निरोधः = चित्तवृत्ति निरोधः, स योगः। ' इस वाक्य के अर्थबोध के लिए चित्त क्या है और उसकी वृत्तियाँ क्या हैं ? इसका ज्ञान अपेक्षित है। इसी प्रसंग में चित्त एवं उसकी वृत्तियों का स्वरूप यहाँ पर प्रस्तुत है।

चित्त–अन्तःकरण सामान्य को ही चित्त कहा गया है। सांख्य–शास्त्र में मन–बुद्धि और अहंकार के भेद से अन्तःकरण तीन बताये गये हैं।

1. योग–शास्त्र में भी अन्तःकरण के इन तीनों भेदों को स्वीकार किया गया है। फिर भी व्यावहारिक दृष्टि से इन तीनों के वाचक एक साधारण नाम की अपेक्षा से ' चित्त ' शब्द का प्रयोग किया गया है। आचार्य विज्ञानभिक्षु के मत से मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार यद्यपि ये चारों भेद योग में स्वीकृत हैं तथापि वृत्ति रूप से एक ही अन्तःकरण के चारों भेद हैं। अतः योगशास्त्र में अन्तःकरण सामान्य ही 'चित्त' पद से बोधित होता है।3 आचार्य वाचस्पति मिश्र ने भी 'चित्त' शब्द को बुद्धि या अन्तःकरण का उपलक्षण माना है।4

यद्यपि सांख्य–मतानुसारण सभी जड़–पदार्थ त्रिगुणात्मक होते हैं। अतः चित्त भी त्रिगुणात्मक है तथापि चित्त में सत्वगुण की बहुलता होती है। इसीलिए प्रख्या, प्रवृत्ति और स्थिति इन तीनों धर्मों से युक्त अर्थात् त्रिगुण होने पर भी चित्त वस्तुतः प्रख्या अर्थात् ज्ञानबहुल होता है। प्रख्या या प्रकाश या ज्ञान सत्वगुण का लक्षण है। अतः चित्त को प्रख्या रूप अर्थात् प्रकाश रूप कहा गया है। इस सत्वबहुलता को प्रकट करने की दृष्टि से ही चित्त को 'चित्त सत्व' नाम दिया गया है। चित्त–सत्वम् अर्थात् सत्व बहुल चित्तम्, सत्व प्रधानं चित्तम्। इसी आशय को स्पष्ट करते हुए आचार्य वाचस्पति मिश्र ने कहा है –

'चित्तरूपेण परिणतं सत्त्वं चित्तसत्त्वम्,

तदीवं प्रख्या रूपतया सत्त्वप्राधान्यं चित्तस्य दर्शितम्।'

यद्यपि चित्त सत्त्वबहुल है तथापि इसमें प्रवृत्ति अर्थात् क्रिया आदि समस्त राजस गुण एवं स्थिति अर्थात् क्रियाराहित्य एवं प्रकाशराहित्य आदि समस्त तामस गुण विद्यमान होते हैं। जब चित्त सत्त्व गौण रूप से विद्यमान रजोगुण और तमोगुण से संसृष्ट होता है तब चित्त सांसारिक ऐश्वर्य तथा शब्दादि विषयों का प्रेमी होता है। इस अवस्था में रजस् और तमस् सत्त्व की अपेक्षा तो गौण रहते हैं, परन्तु परस्पर बराबर मात्रा में अभिव्यक्त होते हैं।

वही चित्त तमोगुण से अनुविद्ध होकर अर्थात् रजोगुण की मात्रा दब जाने पर और तमस के उद्रेक हो जाने पर अधर्म, अज्ञान और अनैश्वर्य की ओर जाने लगता है।

वही चित्त जब इस मूढ़ावस्था के कारण फैले हुए मोहावरण से रहित हो जाता है तब सत्व गुणकृत प्रकाश से युक्त होता है। किन्तु बीच–बीच में रजोगुण की मात्रा की अभिव्यक्तियों से धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की ओर भी उन्मुख होता रहता है।

वही चित्त जब उस रजोगुण के लेशमात्र मल से भी रहित हो जाता है तब वह अपने सत्त्वात्मक स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। उस समय चित्तसत्त्व और पुरुष की अन्यता का ही बोध होता है। चित्त केवल विवेकख्याति रूप रहता है और धर्ममेघ नामक समाधि की ओर उन्मुख होता है। उस धर्ममेघ को योगी लोग पर प्रसंख्यान कहते हैं, यह विवेक ख्याति की ही पराकाष्ठा है। धर्ममेघ शब्द का निर्वचन करते हुए योग–वार्तिककार आचार्य विज्ञानभिक्षु ने कहा है –

क्लेशकर्मादीनां निःशेषेणोन्मूलकं धर्मं मेहतिवर्षति इति धर्ममेघः।

इस प्रकार हमने देखा कि यह चित्त त्रिगुणात्मक होते हुए भी सत्त्व बहुल होने के कारण धर्ममेघाख्य समाधि तक पहुँचने में सक्षम होता है।

मन, बुद्धि और अहंकार इन तीन अन्तःकरण रूप चित्त में मन का काम है– यह ऐसा है, ऐसा नहीं है– इस प्रकार संकल्प विकल्प करना। इसीलिए संकल्प करने वाले को मन कहते हैं। यह मन पंच ज्ञानेन्द्रियों एवं पंच कर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त होते हुए भी उभयात्मक है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का प्रवर्तक होने से वह ज्ञानेन्द्रिय है और कर्मेन्द्रियों का प्रवर्तक होने से कर्मेन्द्रिय भी है। मन को इन्द्रिय इसीलिए माना गया है कि एक ही सात्विक अहंकार मन और अन्य इन्द्रियों का उपादान कारण है।

बुद्धि का काम है निश्चय करना। यह घट है, यह पट है– इस प्रकार निश्चय करना बुद्धि का काम है। अब यह प्रश्न उठता है कि बुद्धि तो जड़ है, अचेतन है, तब वह निश्चय कैसे कर सकती है ? इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार स्फटिक और जपाकुसुम को पास–पास रखे जाने पर स्फटिक जपाकुसुम के लौहित्य को प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार चैतन्य के सन्निधान से बुद्धि भी चैतन्य को प्राप्त कर लेती है। बुद्धि का असाधारण व्यापार अध्यवसाय ही है।

'अहमस्मि' = मैं हूँ– इत्याकारक अभिमान को ही अहंकार कहते हैं। जिस वस्तु को या कार्य को बाह्येन्द्रियों से देखा, पश्चात् मन के द्वारा विशेष रूप से सोचा, उस वस्तु या कार्य में मैं समर्थ हूँ, यह वस्तु या कार्य मेरा उपकारक है, मेरे अतिरिक्त कोई अन्य इसका अधिकारी नहीं है, मैं ही इसका अधिकारी हूँ। इस प्रकार का जो अभिमान या ज्ञान–विशेष है वही अहंकार है। अहंकार का आश्रय कर बुद्धि अपना अध्यवसाय रूप व्यापार करती है। इन मन, बुद्धि और अहंकार रूप अन्तःकरणों की ही एक साधारण संज्ञा चित्त है।

वृत्ति–चित्त के सामान्य निरूपण के अनन्तर चित्त की वृत्ति क्या है ? इस पर विचार प्रसंग प्राप्त है। जिस–जिस स्थिति या रूप में रहता है अर्थात्– परिणत होता रहता है, वे स्थितियाँ चित्त की वृत्तियाँ कहलाती हैं। क्योंकि जिस रीति या विधा से रहा जाए, रहने की वह रीति या विधा ही वृत्ति कहलाती है।' **वर्तते अनया इति वृत्तिः** 'इस प्रकार वृतु वर्तने धातु से करण अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने से वृत्ति शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से भी चित्त की वह अवस्था विशेष ही वृत्ति कहलाती है। चित्त अनेक रूपों में परिणत होता रहता है, इसीलिये चित्त

अभिव्यक्तियों से धर्म, ज्ञान, वैराग्य और ऐश्वर्य की ओर भी उन्मुख होता रहता है।

वही चित्त जब उस रजोगुण के लेशमात्र मल से भी रहित हो जाता है तब वह अपने सत्त्वात्मक स्वरूप में प्रतिष्ठित होता है। उस समय चित्तसत्त्व और पुरुष की अन्यता का ही बोध होता है। चित्त केवल विवेकख्याति रूप रहता है और धर्ममेघ नामक समाधि की ओर उन्मुख होता है। उस धर्ममेघ को योगी लोग पर प्रसंख्यान कहते हैं, यह विवेक ख्याति की ही पराकाष्ठा है। धर्ममेघ शब्द का निर्वचन करते हुए योग–वार्तिककार आचार्य विज्ञानभिक्षु ने कहा है –

क्लेशकर्मादीन् निःशेषेणोन्मूलकं धर्मं मेहतिवर्षति इति धर्ममेघः।

इस प्रकार हमने देखा कि यह चित्त त्रिगुणात्मक होते हुए भी सत्त्व बहुल होने के कारण धर्ममेघाख्य समाधि तक पहुँचने में सक्षम होता है।

मन, बुद्धि और अहंकार इन तीन अन्तःकरण रूप चित्त में मन का काम है– यह ऐसा है, ऐसा नहीं है– इस प्रकार संकल्प विकल्प करना। इसलिए संकल्प करने वाले को मन कहते हैं। यह मन पंच ज्ञानेन्द्रियों एवं पंच कर्मेन्द्रियों के अतिरिक्त होते हुए भी उभयात्मक है अर्थात् ज्ञानेन्द्रियों का प्रवर्तक होने से वह ज्ञानेन्द्रिय है और कर्मेन्द्रियों का प्रवर्तक होने से कर्मेन्द्रिय भी है। मन को इन्द्रिय इसीलिए माना गया है कि एक ही सात्त्विक अहंकार मन और अन्य इन्द्रियों का उपादान कारण है।

बुद्धि का काम है निश्चय करना। यह घट है, यह पट है– इस प्रकार निश्चय करना बुद्धि का काम है। जब यह प्रश्न उठता है कि बुद्धि का काम है। अब यह प्रश्न उठता है कि बुद्धि तो जड़ है, अचेतन है, तब वह निश्चय कैसे कर सकती है ? इसका समाधान यह है कि जिस प्रकार स्फटिक और जपाकुसुम को पास–पास रखे जाने पर स्फटिक जपाकुसुम के लौहित्य को प्राप्त कर लेता है। ठीक उसी प्रकार चैतन्य के सन्निधान से बुद्धि भी चैतन्य को प्राप्त कर लेती है। बुद्धि का आसाधारण व्यापार अध्यवसाय ही है।

'अहमस्मि' = मैं हूँ– इत्याकारक अभिमान को ही अहंकार कहते हैं। जिस वस्तु को या कार्य को बाह्येन्द्रियों से देखा, पश्चात् मनके द्वारा विशेष रूप से सोचा, उस वस्तु या कार्य में मैं समर्थ हूँ, यह वस्तु या कार्य मेरा उपकारक है, मेरे अतिरिक्त कोई अन्य इसका अधिकारी नहीं है, मैं ही इसका अधिकारी हूँ। इस प्रकार का जो अभिमान या ज्ञान–विशेष है वही अहंकार है। अहंकार का आश्रय कर बुद्धि अपना अध्यवसाय रूप व्याधार करती है। इन मन, बुद्धि और अहंकार रूप अन्तःकरणों की ही एक साधारण संज्ञा चित्त है।

वृत्ति–चित्त के सामान्य निरूपण के अनन्तर चित्त की वृत्ति क्या है ? इस पर विचार प्रसंग प्राप्त है। जिस–जिस स्थिति या रूप में रहता है अर्थात्– परिणत होता रहता है, वे स्थितियाँ चित्त की वृत्तियाँ कहलाती है। क्योंकि जिस रीति या विधा से रहा जाए, रहने की वह रीति या विधा ही वृत्ति कहलाती है।' **वर्तते अनया इति वृत्तिः** 'इस प्रकार वृतु वर्तने धातु से करण अर्थ में क्तिन् प्रत्यय करने से वृत्ति शब्द निष्पन्न होता है। इस व्युत्पत्ति से भी चित्त की वह अवस्था विशेष ही वृत्ति कहलाती है। चित्त अनेक रूपों में परिणत होता रहता है, इसीलिये चित्त की वृत्तियाँ वस्तुतः असंख्य हैं, किन्तु सत्त्वादि गुणों के प्राधान्य के अनुसार उनका विभाजन तीन मुख्य श्रेणियों में किया जा सकता है।

की वृत्तियाँ वस्तुत: असंख्य हैं, किन्तु सत्त्वादि गुणों के प्राधान्य के अनुसार उनका विभाजन तीन मुख्य श्रेणियों में किया जा सकता है।

(1) **सात्त्विक वृत्तियाँ** – जिनमें सत्त्वगुण का प्राधान्य है और रजोगुण तथा तमोगुण गौण हों।

(2) **राजस वृत्तियाँ** – जिनमें रजोगुण का प्राधान्य हो और सत्वगुण तथा तमोगुण अप्रधान हों।

(3) **तामस वृत्तियाँ**– जिनमें तमोगुण का प्राधान्य हो और सत्वगुण तथा रजोगुण उससे अभिभूत है। यहाँ यह अवधेय है कि गुण अन्योन्याभिभव, अन्योन्यापेक्ष, अन्योन्यजनन तथा अन्योन्यमिथुन वृत्ति होते हैं।

ज्ञान के रूप भेद के आधार पर चित्त–वृत्तियों का विभाजन पुन: पाँच प्रकारों में किया गया है। प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति। यद्यपि विषयसापेक्ष चित्त–वृत्तियाँ विषयों के आनन्त्य के कारण असंख्य प्रकार की हैं, तथापि योगसूत्र के निर्माता पतंजलि ने उपर्युक्त पाँच वृत्तियों में ही अन्य सभी वृत्तियों का अन्तर्भाव किया है।

वृत्तियों की जातियाँ– ज्ञानात्मक वृत्तियों की दो जातियां हैं – क्लिष्ट तथा अक्लिष्ट। चित्त के रजोगुण एवं तमोगुण बहुल होने पर क्लिष्टात्मक प्रमाणादि वृत्तियों का उदय होता है और चित्त की सात्विक दशा में अक्लिष्टात्मक प्रमाणादि वृत्तियों का उदय होता है। क्लिष्ट वृत्तियों के समय चित्त चंचल एवं व्यथित रहता है और अक्लिष्ट वृत्तियों के समय चित्त शान्त स्वभाव होकर सुख का अनुभव करता है। क्लेशमूलक प्रमाणादि क्लिष्ट वृत्तियाँ कर्माशय को पुष्ट करती हैं। दूसरी तरफ प्रकृति तथा पुरुष के भेदज्ञान को उत्पन्न करने वाली अक्लिष्ट वृत्तियाँ गुणाधिकार की विरोधिनी होने से कर्माशय को शिथिल करती है। इसीलिए भाष्यकार व्यास तथा आचार्य वाचस्पतिमिश्र आदि ने अक्लिष्ट वृत्तियों के द्वारा दु:ख–दायिनी क्लिष्ट वृत्तियों के निरोध के लिए कहा है। मुमुक्षुओं के लिये गुणात्मक अक्लिष्ट वृत्तियों का भी निरोध अपेक्षणीय बतलाया है, अत: योग–मार्ग का साधक सत्त्वपुरुषान्य–ताख्यातिरूप सर्वोत्तम अक्लिष्ट वृत्ति का भी परवैराग्य के द्वारा निरोध करने के लिए प्रयत्नशील रहता है। उसके भी निरुद्ध होने पर सर्ववृत्ति निरोधरूप असंप्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। असंप्रज्ञात समाधि के विजित काल में साधक की जीवन्मुक्त अवस्था रहती है, और देहपात के पश्चात् विदेहमुक्ति प्राप्त करता है। इस प्रकार सांख्ययोग शास्त्र में क्लिष्ट एवं अक्लिष्ट दोनों ही जातियों की वृत्तियों के निरोध का उपदेश दिया गया है।

प्रमाणवृत्ति– प्रमाणवृत्ति विपर्यय आदि चार वृत्तियों की आधारशिला होने के कारण सर्वश्रेष्ठ है।

प्रमीयते अनेन इति प्रणाणम्

इस व्युत्पत्ति के अनुसार जिसके द्वारा प्रमात्मक ज्ञान की उत्पत्ति होती है उसे प्रमाण कहते हैं। विज्ञानभिक्षु तथा आचार्य वाचस्पति मिश्र ने प्रमाण का लक्षण करते हुए इस प्रकार कहा है कि अज्ञात तत्त्व का पौरुषेय अर्थात् पुरुष को होने वाला ज्ञान ही प्रमा है और उस प्रमा का कारण प्रमाण–नामक वृत्ति है–

अनधिगततत्त्वबोध:पौरुषेयो व्यवहार हेतुः प्रमा, तत्करणं प्रमाणम्।

पातंजल योग–शास्त्र में प्रमाणों की संख्या तीन बताई गई है। प्रत्यक्ष प्रमाण, अनुमान प्रमाण तथा आगम या शब्द प्रमाण। तीन प्रकार के प्रमाणों से तीन प्रकार की प्रमायें उत्पन्न होती हैं – प्रत्यक्ष प्रमा, अनुमति प्रमा तथा शाब्द प्रमा। प्रमाण वृत्ति को छोड़कर विपर्यय आदि किसी भी वृत्ति से प्रमा उत्पन्न नहीं होती है, क्योंकि विपर्यय आदि वृत्तियों से उत्पन्न होने वाले ज्ञान में अनधिगत एवं अबाधित अर्थ विषमता नहीं रहती है। अतः प्रत्यक्षादि तीनों प्रमाणों से ही प्रमा–ज्ञान हो सकता है। सांख्ययोग शास्त्रमें प्रमा पुरुषनिष्ठ होने के कारण ' पौरुषेय बोध ' नाम से अभिहित होता है।

ज्ञानोत्पत्ति के लिए पातंजल योग–शास्त्र में अन्य शास्त्रों में प्रचलित विधि से पूर्णतया भिन्न विधि बताई गई है जो अनुभव सिद्ध है।

प्रत्यक्ष प्रमाण वृत्ति – प्रत्यक्ष प्रमाण का निरूपण करते हुए भाष्यकार व्यासदेवजी ने कहा है – " **इन्द्रिय प्रणालिकथा चित्तस्य बाह्यवस्तू परागात् तद् विषया सामान्यविशेषात्मनोऽर्थस्य विशेषावधारण प्रधाना वृत्तिः प्रत्यक्षं प्रमाणमिति।** " अर्थात् ज्ञानेन्द्रियरूपिणी प्रणाली नाली या नली अर्थात् माध्यम से चित्त का बाह्य वस्तु से सम्पर्क होता है। इस सम्पर्क से चित्त उस बाह्यवस्तु के आकार में आकारित हो जाता है। विषयाकाराकारित चित्तवृत्ति ही पौरुषेय बोध के प्रति कारण है। पातंजल योग–दर्शन के सभी व्याख्याकारों ने चित्त का विषयाकार परिणाम एक ही पद्धति से सिद्ध किया है। जिस प्रकार बाँध आदि द्वारा रोका हुआ नदी का जल कृषक द्वारा बनाये गये मार्ग से खेत में प्रविष्ट होकर क्यारियों का आकार धारण करता है। ठीक उसी प्रकार सत्वगुण प्रधान तो जो द्रव्य चित्त भी इन्द्रियरूपी नली के द्वारा विषय के पास तक जाकर उसी विषय के आकार में आकारित हो जाता है। विषय के आकार में होने वाले चित्त के उस परिणाम को ही चित्त की वृत्ति कहते हैं और यही प्रत्यक्ष प्रमाण है। यहाँ यह अवधेय है कि बुद्धि जिस पदार्थ के आकार में आकारित होती है वह पदार्थ चूँकि सामान्य और विशेष धर्मों से युक्त होता है। अतः बुद्धि भी उस पदार्थ के उभयाकार से आकारित होती है। किन्तु प्रधानता उसमें विशेष वाले आकार की ही होती है। पदार्थ के विशेष धर्म का प्रधान रूप से निश्चय करने वाली जो यह बुद्धि वृत्ति बनती है, इसको प्रत्यक्ष प्रमाण नामक वृत्ति कहते हैं। प्रत्येक पदार्थ में कुछ तज्जातीय धर्म होते हैं और कुछ उसके वैयक्तिक धर्म इसीलिए प्रत्येक पदार्थ सामान्य विशेषात्मा होता है। यद्यपि प्रत्यक्ष प्रमाण से पदार्थ के सामान्य और विशेष दोनों प्रकार के धर्मों का बोध होता है तथापि विशेष धर्मों का अवधारण कराने में ही प्रत्यक्ष प्रमाण प्रधान रूप से कृतसंरम्भ होता है। इसीलिए आचार्य वाचस्पति मिश्र कहते हैं–

यद्यपि सामान्यमपि प्रत्यक्षे प्रतिभासते तथापि विशेषं प्रति उपसर्जनीभूतमित्यर्थः।

यहाँ पर यह अवधेय है कि सांख्य योग–शास्त्र में न्यायशास्त्र के समान इन्द्रियों को प्रत्यक्ष प्रमाण नहीं माना है। इस शास्त्र में तो इन्द्रियाँ केवल नाली–प्रणाली या माध्यम हैं, जिनमें से होकर बुद्धि बाह्य वस्तु से उपराग या तदाकाराकारित्व रूप सम्पर्क करती है। इसी आशय को सांख्यकारिका में भी स्पष्ट किया गया है–

सान्तःकरणाबुद्धिः सर्वं, विषमभवगाहते यस्मात्।

तस्मात् त्रिविधं कारणं द्वारि, द्वाराणि शेषाणि।।

इस प्रकार स्पष्ट है कि बुद्धिनिष्ठ ज्ञान अर्थात् बुद्धि–वृत्ति ही प्रमाण है। जब पुरुष उस ज्ञान को अपनाता है अर्थात् उस ज्ञान का ज्ञाता बनता है, तब वह ज्ञान पुरुषगत या पौरुषेय कहा जाता है। यह पौरुषेय ज्ञान प्रमाण है और यही प्रमाणरूपी करण का फल है। आशय यह है कि बुद्धिनिष्ठ ज्ञान प्रमाण होता है और पुरुषोपरक्त ज्ञान प्रमा।

अब यहाँ स्वभावत: यह शङ्का उठती है कि पुरुष तो असंग है, उसमें यह प्रमा कैसे रह सकती है? इसका समाधान यह है कि पुरुष उस बुद्धि निष्ठ ज्ञान का अभिमान मात्र होता है। वस्तुत: वह पुरुष तो अविकृत और असंग ही रहता है। पुरुष के इस अभिमत ज्ञान को ही पौरुषेय बोध कहते हैं। यही प्रमा कही जाती है। बुद्धिस्थ ज्ञान अर्थात् बुद्धिवृत्ति का अभिमान मात्र करने के कारण ही वस्तुत: असंग और निर्लेप रहता हुआ भी पुरुष साक्षी और द्रष्टा या भोक्ता कहा जाता है। इस 'वृत्त्याभिमान की प्रक्रिया के विषय में सांख्ययोग के दो प्रमुख आचार्यों– आचार्य वाचस्पति मिश्र एवं आचार्य विज्ञानभिक्षु में तीव्र एवं सुस्पष्ट मतभेद हैं। उनके एतद् विषयक मतभेद क्रमश: इस प्रकार हैं –

आचार्य वाचस्पति मिश्र का मत– (Single Reflection Theory) जड़ होने के कारण बुद्धि स्वत: किसी भी पदार्थ का ज्ञान नहीं कर सकती, अर्थात् वस्त्वाकाराकारित नहीं हो सकती है। इसलिए सर्वप्रथम वह चितिच्छायापत्ति के कारण स्वयं चेतनवत् बनती है अर्थात् सन्निहित पुरुष का बुद्धि में प्रतिबिम्ब पड़ता है, जिससे वह चेतनवत् हो जाती है। इसके फलस्वरूप वह पदार्थाकारित होकर पदार्थ ज्ञान से मुक्त होती है। बुद्धि की इस रूप की स्थिति प्रमाणादि वृत्ति कही जाती है। अब जो चितिच्छाया या पुरुष प्रतिबिम्ब उसमें है वही पुरुष प्रतिबिम्ब उस चित्तवृत्ति का साक्षी, द्रष्टा या बौद्धा बनता है अर्थात् उस वृत्ति का अभिमान करता है। प्रतिबिम्ब रूप पुरुष के द्वारा अभिमत यही बोध पौरुषेय बोध या प्रमा कहलाता है। प्रकृति–पुरुष को इसी रूप का भोग अर्पित करती है। चूँकि इस प्रक्रिया में प्रथम चितिच्छायापत्ति रूप केवल एक ही प्रतिबिम्ब स्वीकार किया गया है। इसीलिए इस सिद्धान्त को **" एक प्रतिबिम्बवाद "** (Single Reflection Theory) कहते हैं।

आचार्य विज्ञानभिक्षु का मत– आचार्य विज्ञानभिक्षु के अनुसार जिस प्रकार विषयकाराकारित चित्त में पुरुष प्रतिबिम्ब होता है, उसी प्रकार पुरुष में सुख–दु:ख आदि विषयिणी चित्तवृत्ति प्रतिबिम्बित होती हैं। इसी कारण पुरुष सुख–दु:ख आदि वृत्ति वाला कहा जाता है। पुरुष की यह विषयाकारता अभिमान रूप है। बुद्धि की विषयाकारता परिणाम रूप है। पुरुष की अभिमानात्मक अर्थाकरता अर्थग्रहण या बोधरूप है। स्फटिक में प्रतिफलित जपाकुसुम की भाँति उपरक्त रूप नहीं। इस प्रकार इस प्रक्रिया में पुरुष–प्रतिबिम्ब और चित्तवृत्ति प्रतिबिम्ब में दो प्रतिबिम्ब स्वीकार किये जाने के कारण इस सिद्धान्त को द्विप्रतिबिम्बवाद या परस्पर प्रतिबिम्बवाद (Double Reflection Theory) कहते हैं। बुद्धि चितिच्छायापत्तिवलात् वस्तु–संवेदिनी होती है और इस बुद्धिकृत संवेदन का प्रतिसंवेदन करने के कारण पुरुष बुद्धि का प्रतिसंवेदी कहा गया है।

अनुमान प्रमाणवृत्ति – अनुमान व्याप्तिमूलक होता है। दो वस्तुओं के नियत्त सम्बन्ध को

व्याप्ति कहते हैं। जैसे धूम के साथ अग्नि का व्याप्ति सम्बन्ध है। धूम एवं अग्नि के व्याप्ति–सम्बन्ध को जानने वाला व्यक्ति जब दूर से पर्वत आदि पर धूमरेखा को उठता हुआ देखता है, तब उसकी " अन्य पर्वतो वह्निमान् " इस प्रकार की चित्तवृत्ति बनती है, इसे अनुमान प्रमाण कहते हैं। तदनन्तर उक्त चित्तवृत्ति में प्रतिबिम्बित पुरुष को अहं वह्निमनुमिनोमि इत्याकारक ज्ञान होता है, इसे अनुमति प्रमा कहते हैं। अनुमान प्रमाण से पर्वत आदि पक्ष में रहने वाले अग्नि आदि साध्य के सामान्य रूप का ही ज्ञान होता है। इसीलिये अनुमान को सामान्यावधारणप्रधान वृत्ति कहते हैं।

व्याप्ति दो प्रकार की होती हैं – अन्वयव्याप्ति और व्यतिरेक व्याप्ति। सन्वयव्याप्ति के द्वारा गतिशील मनुष्य के समान तारों के भी एक देश से दूसरे देश में दिखलाई पड़ने से तारों की गतिशीलता अनुमित होती है। व्यतिरेक व्याप्ति के द्वारा विन्ध्य पर्वत का स्थानान्तरण न होते देखकर उसकी गतिशून्यता अनुमति होती है।

शब्दप्रमाण वृत्ति– भ्रम, प्रमाद, प्रवश्चना, इन्द्रियों का असामर्थ्य आदि दोषों से रहित आप्त पुरुष अपने ज्ञान को शब्दोपदेश द्वारा दूसरे में सक्रमित करता है। तदनन्तर आप्तवक्ता के शब्दों को सुनकर श्रोता की शब्दार्थ विषयिणी चित्तवृत्ति बनती है, इसे आगम–प्रमाण या शब्द–प्रमाण कहते हैं। तदनतर शब्दाकाराकारित वृत्ति से अवशिष्ट हुए प्रतिम्बित पुरुष को शाब्द बोध शाब्द–प्रमा = पौरुषेय बोध होता है। चूंकि अविश्वस्त व्यक्ति का कथन प्रत्यक्ष एव अनुमान से बाधित होता है, इसीलिए उसका वचन या शब्द प्रमाण नहीं होता है।

विपर्यय वृत्ति– विपर्यय मिथ्या ज्ञान को कहते हैं। इसमें वस्तु के वास्तविक स्वरूप की अभिव्यक्ति न होने से वस्तु का यथार्थ ज्ञान नहीं हो पाता है। नेत्र रोग से ग्रस्त व्यक्ति को सूर्य की किरण के सम्पर्क से चम–चमाती हुई शुक्ति दूर से रजत दिखलाई पड़ती है और उसकी 'यह रजत है ' इत्याकारक वृत्ति बनती है। इस बुद्धि–वृत्ति में प्रतिबिम्बित पुरुष को मैं रजत जान रहा हूँ– इत्याकारक बोध होता है। इस ज्ञान में जिस विशेषण तथा विशेष्य वाला रूप प्रतिभासित हो रहा है, उसका उत्तरकालिक यथार्थ ज्ञान से बोध हो जाता है।

विपर्यय वृत्ति के अन्तर्गत संशय का भी ग्रहण करना चाहिए, क्योंकि संशय ज्ञान की ' स्थाणु ' के ज्ञान–काल में स्थाणु से भिन्न 'स्थाणु–पुरुष '– इस प्रकार उभयाकार में प्रतिष्ठित होता है। अर्थात् संशय ज्ञान की वृत्ति सम्भावाकार होने के स्थान पर स्थाणुपुरुषाकार होती है। इस प्रकार विपर्ययवृत्ति भ्रान्ति एवं संशय दोनों को अन्तर्भावित करती है। इस वृत्ति को अविद्या भी कहते हैं। इसके पाँच क्लेश पर्व या अंग बताये गये हैं– अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश। अविद्या के इन पाँचों पर्वो को पाँच भी कहते हैं। ये क्लेश चित्त के मल हैं, स्मृतियों में इनके नाम– तमस्, मोह, महामोह, तामिस्त्र एवं अन्धतामिस्त्र भी दिये गये हैं।

विकल्प वृत्ति– विकल्प वृत्ति निर्वस्तुक एवं शब्द–ज्ञान से उत्पन्न कही गई है। जैसे गगन–कुसुम, शशशृङ्ग आदि शब्दों को सुनने के बाद उत्पन्न अलीक पदार्थ विषयक ज्ञान विकल्प वृत्ति है। विकल्प वृत्तिजन्य ज्ञान विपरीत बुद्धि से बाधित नहीं होता है। विपरीत बुद्धि के पश्चात् भी विकल्पात्मक व्यवहार चलता रहता है। अर्थात् गगनकुसुम नामक कोई वस्तु परमार्थतः नहीं है– इस प्रकार विपरीत बुद्धि रहने पर भी गगनकुसुम इत्याकारक श्रावण प्रत्यक्ष से तद् विषयक विकल्पात्मक वृत्ति बनती है।

उक्त विकल्प वृत्ति का अन्तर्भाव प्रमाण वृत्ति में नहीं किया जा सकता, क्योंकि प्रमाण वृत्ति यथार्थ विषयिणी और विकल्प वृत्ति अयथार्थ विषयिणी है। प्रमाणवृत्ति का विषय सत्य है, विकल्प वृत्ति का विषय अलीक है। विषय की अत्यन्त विजातीयता के कारण विकल्प वृत्ति का अन्तर्भाव प्रमाण वृत्ति में सम्भव नहीं है।

विकल्प वृत्ति का अन्तर्भाव विपर्यय वृत्ति में भी नहीं हो सकता, क्योंकि यह शब्द–ज्ञान से उत्पन्न होती है और व्यवहार में अबाधित रहती है।

निद्रावृत्ति– चित्त की तीन अवस्थायें होती हैं– जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति। जाग्रत तथा स्वप्न वृत्तियों के अभाव के कारणभूत तमोगुण को विषय बनाने वाली वृत्ति निद्रा है। यह निद्रा वृत्ति जागने पर स्मरण होने के कारण एक प्रकार का ज्ञान ही है, क्योंकि मैं सुख से सोया, मेरा मन प्रसन्न है या मैं बहुत बेचैनी से सोया, मेरा मन अकर्मण्य हो रहा है, चंचल होकर भ्रमित हो रहा है। मैं खूब गहरी नींद सोया , मेरा शरीर भारी हो रहा है, मेरा चित्त थका हुआ है और खोया–खोया सा है। जागे हुए प्राणी को इस प्रकार का ज्ञान होता है। बिना अनुभव की स्मृति नहीं है। अत: निद्रा एक विशेष प्रकार का ज्ञान (वृत्ति) ही है।

यहाँ पर एक शंका उपस्थित होती है कि भिन्न–भिन्न विषय वाली वृत्तियों के निरोधपूर्वक चित्त का ध्येयाकार परिणाम सम्प्रज्ञात योग और केवल तमोविषयिणी चित्तवृत्ति निद्रा है। चित्त की एकाग्रावस्था में निद्रावृत्ति का उदय होता है, क्योंकि इस समय चित्त एकमात्र तमोरूप ध्येय पदार्थ के आकार में ही परिणत होता है। अत: एकाग्र चित्त की तमस के आकार वाली निद्रा को भी क्या सम्प्रज्ञात योग कहना चाहिए ? इसका समाधान यह है कि सम्प्रज्ञात योगकालिक चित्त की ध्येयाकारता और निद्राकालिक चित्त की ध्येयाकारता भिन्न है। योग में ध्येयाकारता प्रयत्न सापेक्ष है, निद्रा में ध्येयाकारता निरपेक्ष है। योग की ध्येयाकारता में चित्त सत्वगुण प्रधान और निद्रा की ध्येयाकारता में तमोगुण प्रधान होता है। निद्रा में तमसाच्छन्न होने के कारण चित्त की क्रियाशीलता रुक जाती है। इस कारण वह भी एक प्रकार की स्थिरता है, परन्तु चित्त की यह स्थिरता समाधिकाल की स्थिरता से कुछ भिन्न है। निद्रा अवश तथा अस्वच्छस्थिरता है, समाधि स्ववश तथा स्वच्छ स्थिरता है। स्थिर किन्तु अवच्छ जल के समान निद्रा होती है। स्थिर तथा अत्यन्त निर्मल जल के समान समाधि होती है। अत: चित्त की मूढ़ावस्था में होने वाली चित्तवृत्ति एकाग्रकालिक के समकक्ष नहीं हो सकती। निद्रा तामसी होने के कारण सम्प्रज्ञात समाधि के विरुद्ध है।

स्मृति वृत्ति– अनुभूत विषय की चित्त में उपस्थिति स्मृति नामक वृत्ति है। " **अनुभूत विषयासम्प्रमोष: स्मृति:।** " अब समस्या यह है कि अनुभूत विषय की चित्त में जो उपस्थिति है, उसमें विषय की उपस्थिति होती है अथवा विषय के अनुभव ज्ञान की। इसके समाधान के लिए पहले स्मृति की ' क्रिया को स्पष्ट करना आवश्यक है। अनुभव काल में ग्राह्य विषय से उपरक्त या उपरंजित ही ज्ञान होता है। इसीलिये वह घटा–अनुभव रूप ज्ञान ग्राह्य विषय घटादि तथा ग्रहणात्मक अनुभव– इन दोनों के आकार में भासित होता है। ग्राह्य ग्रहण इन दोनों रूपों के होने के कारण तत्सदृश ही संस्कारों को उत्पन्न करता है, क्योंकि सांख्ययोग के अनुसार जो वस्तु स्वयं जैसी होती है, वह वैसा ही कार्य उत्पन्न कर सकती है।

घटादि विषयों से उत्पन्न ये संस्कार ही आगे चलकर स्मृति को उत्पन्न करते हैं, अब

चूंकि ये संस्कार भी ग्राह्यग्रहणोभयाकार रूप के निर्मित हुए हैं। अतः ये विषय और अनुभव दोनों के आकार वाली स्मृति को उत्पन्न करते हैं।

अब यहाँ एक प्रश्न उठता है कि जब अनुभव के तुल्य विषय वाली ही स्मृति है, तब अनुभव एवं स्मृति के रूप में ज्ञान का द्विविध विभाजन क्यों किया गया ? इसका समाधान भाष्यकार व्यासदेवजी इस प्रकार करते हैं – ' तत्र ग्रहणाकार पूर्वा, बुद्धि, ग्राह्याकारपूर्वा स्मृतिः। ' अर्थात् अनुभव अगृहीत पदार्थ को विषय बनाता है और स्मृति प्रमाणादि वृत्तियों से ज्ञान विषय वाली होती है। अतः अनुभव एवं स्मृति में समान विषमता रहने पर भी विषयों का अनधिगतत्व दोनों ज्ञानों को भिन्न सिद्ध करता है।

यह स्मृति दो प्रकार की होती है – 1. भावितस्मर्त्तव्या और 2. अभावितस्मर्त्तव्या। प्रमाणादि वृत्ति–जन्य संस्कारों से स्वप्नावस्था में होने वाली स्मृतिवृत्ति भावित स्मर्तव्या तथा जाग्रत अवस्था से होने वाली स्मृतिवृत्ति अभावितस्मर्तव्या है, क्योंकि स्वप्नकालिक स्मर्तव्य विषय मनःकल्पित तथा जाग्रतकालिक स्मर्तव्य विषय यथार्थ होता है। जैसाकि भास्वतीकार ने कहा है–

भावितानि कल्पितानि स्मर्तव्यानि यस्यां सास्वप्नेहि कल्पनया स्मृतविषया उद्भाव्यन्ते जागरे न तथा।

इस प्रकार चित्त जिन–जिन स्थितियों में या रूपों में विद्यमान रहता है या परिणत होता है उन रूपों को उपर्युक्त पाँच वृत्तियों के अन्तर्गत रखा गया है। इन समस्त वृत्तियों का निरोध ही योग का चरम लक्ष्य है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

योगेश्वर चरित्र माला

योगयोगेश्वर अनन्त श्री गुरुदेव जी द्वारा

संवाई आने से पूर्व आनन्दकन्द श्री प्रभु जी ने कुछ दिन मथुरा में निवास किया, वहाँ एक योगाभ्यासी ब्रह्मचारी भी रहते थे। उनके हजारों शिष्य थे, जो कि हमेशा उनकी सेवा में लगे रहते थे। ब्रह्मचारी जी की ख्याति सुनकर लोग अपनी मनोकामनाओं की पूर्ति के लिये दूर–दूर से उनके पास आया करते थे। इस प्रकार उनके पास दर्शनार्थियों की भीड़ लगी रहती थी। कल्याणधन श्री प्रभु जी उस ब्रह्मचारी को प्रवृत्ति मार्ग से हटाना चाहते थे। उन्होंने कृपा पूर्वक उसे दर्शन दिये और कहा तुम इस झमेले में व्यर्थ ही फंस रहे हो, तुम्हारा मार्ग निवृत्ति का है। तुम्हें एकान्त में रहते हुए अपना अभ्यास बढ़ाने के लिये प्रयत्न करना चाहिए।

ब्रह्मचारी ने कहा– प्रभो ! ये लोग मेरे भक्त हैं, मुझसे बहुत स्नेह रखते हैं। मेरे बिना तो ये लोग रह ही नहीं सकते। इनको मैं कैसे छोड़ूँ ? श्री प्रभु जी ने कहा– इनमें से कोई भी तुम्हारा अपना नहीं है। ये लोग भक्ति का दिखावा मात्र करते हैं परन्तु भक्त नहीं है। यदि तुम्हें विश्वास न हो तो परीक्षा करके देख लो। यह कहकर श्री प्रभु जी अन्तर्धान हो गये।

ब्रह्मचारी जी बहुत देर तक अपने मन में विचार करते रहे और अन्त में उन्हें एक उपाय सूझा उन्होंने नगर से एक वैश्या को बुलाया और चुपके से उसे कुछ रुपये देकर कहा जब मैं शिष्यसमुदाय के बीच में बैठा हूँगा तो तुम कुछ इस प्रकार की हरकत करना जिससे सभी लोग मुझसे घृणा करने लग जायें और मेरे विरोधी बन जायें।

वैश्या ने ऐसा ही किया। जब ब्रह्मचारी अपने भक्तों के बीच में बैठे हुये थे तो उपरोक्त वैश्या सामने आकर बोली– "महात्मा जी ! आप बनते तो सिद्ध महापुरुष हैं लेकिन काम आपके इतने घटिया हैं कि आपने मेरा पचास रुपये का उधार अब तक नहीं चुकाया मेहरबानी करके मेरे पैसे अभी दे दो नहीं तो मैं आपका सारा महात्मापन निकाल दूँगी।"

ब्रह्मचारी जी ने उसे चुप रहने का संकेत किया किन्तु वह अधिक जोर से बोलने लगी और ब्रह्मचारी पर घृणित से घृणित लाँछन लगाने लगी। तब ब्रह्मचारी जी ने उसे पचास रुपये देकर विदा कर दिया।

इस घटना को देखकर सारा समुदाय दंग रह गया। सबने यही अनुमान लगाया कि ब्रह्मचारी जी वैश्यागामी हैं, अतः सभी नाक मुँह सिकोड़कर एक – एक कर वहाँ से खिसकने लगे, देखते ही देखते सारा पंडाल खाली हो गया। वहाँ कुल दो ही व्यक्ति रह गये जो कि ब्रह्मचारी जी के अनन्य भक्त और सेवक थे।

अब ब्रह्मचारी को पूरा विश्वास हो गया कि ये सब लोग स्वार्थी हैं और भक्ति का दिखावा करते हैं। इन लोगों से तो अब छुटकारा हो ही गया है, अब मुझे ऐसा काम करना चाहिए कि – नगरवासी सब लोग मुझसे घृणा करने लग जायें और यहाँ आकर मेरे भजन में बाधक न

बनें। इस उद्देश्य से वह हाथ में शराब की बोतल लेकर उसी वैश्या के साथ नगर की गलियों और बाजारों में घूमने लगा। वैश्या उस ब्रह्मचारी के गले में हाथ डाले हुई थी और दोनों बड़ी मस्ती के साथ आपस में बातें करते हुए शराबियों की तरह झूमते हुए जा रहे थे।

नगरवासी इस दृश्य को देखकर आश्चर्य चकित थे और अपनी – अपनी मति के अनुसार यही अनुमान लगा रहे थे कि ब्रह्मचारी शराबी है और वैश्यागामी है। सभी लोग उन दोनों को तरह–तरह के ताने सुनाते जा रहे थे। कोई कहता है–

यह वही ब्रह्मचारी है जो अपने को योगी बताकर सारे शहर को वेबकूफ बनाये हुए है। इसके दो हजार से अधिक शिष्य हैं।

कोई कहता जब गुरुओं के ये हाल हैं तो चेलों का तो ईश्वर ही मालिक है।

इस पर एक वृद्ध ने कहा– भाई किसी को दोष मत दो। यह सब कलियुग का प्रभाव है, यह महात्मा भी कलयुगी है।

स्त्रियाँ उन्हें देखकर मुँह सिकोड़ लेती और कोई तो थूक कर मुँह फेर लेती थी। बच्चे तालियाँ बजा बजाकर उस ब्रह्मचारी का उपहास कर रहे थे। कई लोग ब्रह्मचारी की ओर संकेत करके आपस में एक दूसरे को कह रहे थे।

देख लिया तुमने अपने गुरु का हाल ? अब तो नहीं कहोगे कि– मेरे गुरु बड़े चमत्कारी हैं और पूर्ण सिद्ध है आज उनका असली चमत्कार सबने देख लिया है।

इस प्रकार के अपमान जनक व्यवहार का महात्मा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा, वे मन ही मन प्रसन्न हो रहे थे और शराबी का अभिनय करते हुए उसी मस्ती के साथ भरे बाजार में आगे गुजरते जा रहे थे।

इतने में आनन्दकन्द श्री प्रभु जी भी अपने शिष्यों के साथ टहलते हुए सामने से निकले ब्रह्मचारी ने उन्हें झुककर प्रणाम किया और श्री प्रभु जी ने उसे आशीर्वाद दिया। यह देख उनके साथ चल रहे शिष्यों को बड़ी हैरानी हुई। वे अपने मन में सोचने लगे कि प्रभु जी ने इस शराबी को आशीर्वाद क्यों दिया होगा, इसे तो दण्ड देना चाहिये था। पंडा नामक एक व्यक्ति से रहा नहीं गया। वह पूछ ही बैठा प्रभु जी यह शराबी तथा भ्रष्ट महात्मा आपको प्रणाम कर रहा है और आप भी इसे आशीर्वाद दे रहे हैं। यह रहस्य हमारी समझ में नहीं आया। हमें बड़ा आश्चर्य हो रहा है।

प्रभु जी ने मुस्कराते हुए कहा– बेटा ! सायं काल को तुम हमारे साथ उस ब्रह्मचारी के आश्रम में चलना। वहाँ सारी बात तुम्हारी समझ में आ जायेगी।

अपने कार्यक्रम के अनुसार श्री प्रभु जी पंडा को साथ लेकर ब्रह्मचारी की कुटिया में पहुँचे वहाँ जाकर देखा कि ब्रह्मचारी अपने ध्यान कक्ष में समाधिस्थ थे और उनका आसन जमीन से उठकर कमरे की छत के साथ लगा हुआ था। प्रभु जी ने पंडा से कहा बेटा ! यह वही ब्रह्मचारी है जो शराब की बोतल हाथ में थामे वैश्या के साथ बाजार में घूम रहा था। अब तुम समझ ही गये होगे कि क्यों मैंने इसे आशीर्वाद दिया था ?

पंडा हाथ जोड़कर अत्यन्त नम्रता से बोला प्रभो ! मुझ मूढ़बुद्धि को क्षमा कीजिये मैंने अपनी स्थूल बुद्धि से यही अनुमान लगाया था कि यह ब्रह्मचारी भ्रष्ट है। मुझे पता नहीं था कि यह ऐसा पहुँचा हुआ महात्मा है।

पंडा को यह दृश्य दिखाकर श्री प्रभु जी उसके साथ चुपचाप अपने स्थान को लौट

आये।

अगले दिन प्रातः श्री प्रभु जी अकेले ही ब्रह्मचारी के पास गये और पूछा– क्या बात है, आज तुम्हारे भक्त लोग नजर नहीं आ रहे हैं ? ब्रह्मचारी ने उन्हें साष्टाङ्ग प्रणाम किया और अत्यन्त विनय पूर्वक बोला दीनबन्धो ! आप ठीक ही कह रहे थे। वे सब लोग स्वार्थी थे। आपकी कृपा से मैंने युक्ति से काम लेकर उन सबसे पीछा छुड़ा लिया है।

श्री प्रभु जी ने उसे मीठी ताड़ना देते हुए कहा यह तो ठीक है पर तुम्हें महात्माओं के नाम को बदनाम नहीं करना चाहिये। खैर क्या अब भी तुम्हारे पास कोई सेवक है ?

ब्रह्मचारी बोला– दयानिधान ! अब मेरे पास केवल दो व्यक्ति रह गये हैं। वे मेरे सच्चे भक्त हैं।

श्री प्रभु जी किसी बहाने वहां से उठे और ब्रह्मचारी के सेवकों कन्हैया और शंकर को एक ओर बुलाकर एकान्त में उनसे वार्तालाप करने लगे। श्री प्रभु जी बोले – भाई तुम लोग यहाँ रहकर अपना जीवन बरबाद क्यों कर रहे हो। तुम जानते ही हो कि ब्रह्मचारी वैश्यागामी है और शराबी है। ऐसे व्यक्ति से तुम कल्याण की क्या आशा रखते हो ? शहर इसके नाम पर थूक रहा है और तुम अब भी इसके भक्त बने हुए हो। इस पर कन्हैया बोला– कह तो आप ठीक ही रहे हैं, पर किया जाये।

किन्तु शंकर अपने मुख की निन्दा को सहन नहीं कर सका और रोषपूर्वक बोला महात्मा जी ! हमारे गुरुदेव के चरित्र के बारे में ऐसी बातें कहने का आपको कोई अधिकार नहीं है। खबरदार ! अब आपने उनकी निन्दा की तो ठीक नहीं होगा। आपको अतिथि समझकर क्षमा कर रहा हूँ। अब आपका हित इसी में है कि आप चुपचाप यहाँ से चले जाओ।

इस पर कल्याणधन श्री प्रभु जी ने गद्–गद् होकर उसे कंठ से लगा लिया और उसे उसी समय समाधि प्रदान कर दी।

तब श्री प्रभु जी ने ब्रह्मचारी को कहा तुम्हारे शिष्य शंकर को अधिकारी जानकर हमने समाधि दे दी है। कन्हैया में अभी कुछ कमी है। इसे भी तुम साधनायोग में लगाओ, कालान्तर में यह भी समाधि का अधिकारी बनकर कल्याण भाजन बन जायेगा।

श्री प्रभु जी ने ब्रह्मचारी को असंग रहने की आज्ञा दी और उसे अपना अमोघ आशीर्वाद प्रदान कर वहाँ से प्रस्थान कर गये।

श्री प्रभु जी की कृपा से वह ब्रह्मचारी बिल्कुल वीतराग बन गया और निर्बीज समाधि को प्राप्त हो गया। वह उस स्थान को छोड़कर चला गया और हिमालय की कन्दराओं में जाकर समाधिस्थ रहने लगा।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मानव प्रगति में श्रद्धा

डॉ. जगदीश शरण द्विवेदी, एम. ए. बी. एड., झाँसी

मानव जीवन की प्रगति, चाहे वह सांसारिक हो, चाहे आध्यात्मिक हो या अन्य ज्ञान या विज्ञान से सम्बन्धित हो, उस प्रगति के लिए मार्ग दर्शक एवं मूल तत्व के रूप में श्रद्धा का बीजारोपण होना आवश्यक है। सांसारिक प्रगति के लिए किसी आदर्श पुरुष, आध्यात्मिक ज्ञान के लिए समर्थ गुरुदेव, एवं अन्य ज्ञान विज्ञान के लिए किसी न किसी योग्य गुरु की शरण की आवश्यकता पड़ती है, जब तक पूर्ण समर्पण नहीं हो जाता है तब तक वह व्यक्ति केवल शब्दों का भाव जंजाल ही फैलाता है, इसके लिए श्रद्धा हृदय में होना परम आवश्यक है।

श्रद्धा का अर्थ है किसी समर्थ महिमामय पुरुष में आसक्त होना अर्थात् प्रेम का उत्पन्न होना। जैसे किसी बिजली के स्विच को दबाने से सारे कमरे में प्रकाश एक साथ हो जाता है। उसी प्रकार से श्रद्धा के द्वारा अपने आराध्य को अपने साथ एकाकार कर, इष्ट की गुण रूपी लीलायें एवं कृपा हिलोरों का अनुभव होने लगता है। श्रद्धा मानव प्रगति की अमूल्य निधि है। श्रद्धा ध्यान धारणा तथा समाधि की जननी है।

महर्षि पतजलि जी ने –

श्रद्धा वीर्य स्मृति समाधि प्रज्ञा पूर्वक इतरेषाम्

इस सूत्र में श्रद्धा को समाधि का मूल माना है।

महात्मा गोस्वामी तुलसीदास ने भी अपने ग्रन्थ रामचरित मानस में इसी सिद्धान्त का प्रतिपादन करते हुए लिखा है।

श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई।

बिन महि गंध कि पावइ सोई।।

गोस्वामी जी ने भी श्रद्धा को ही धर्म का मूल आधार माना है। प्रेम का फल श्रद्धा है, और प्रेम का बीज है आदर तथा सम्मान का भाव। जिस महापुरुष के प्रति आदर तथा सम्मान भाव होता है वहाँ प्रेम निश्चित हो जाता है और श्रद्धा का अपार सागर लहराने लगता है वहीं उस समर्थ गुरुदेव की कृपायें तथा ज्ञान का प्रकाश, हृदय में अंधकार को अपनी ज्ञान रूपी किरणों से नष्ट करना प्रारम्भ कर देता है। सद्मार्ग, एकाग्रता, तथा ज्ञान का नाद कर्ण कुहरों में सुनाई देने लगता है। जिससे मानव अपनी मन चाही मंजिल की ओर बढ़ जाता है।

बृज की गोपिकाओं का प्रेम, श्रद्धा के रूप में जब परिणित हुआ तो ऊधव का ज्ञान भी उन्हें निःसार सा प्रतीत होने लगा। आनन्द कंद श्री कृष्ण की वह लीलायें उनके श्रद्धा का कारण थीं। वे मुक्ति नहीं चाहती थीं। वे तो अपने कृष्ण कन्हैया के एक बार दर्शन करना चाहती थीं। उनकी श्रद्धा, अडिग विश्वास ने ऊधव के समान व्यक्ति को भी एक बार भावना के प्रबल बयार

से झकझोर डाला। सुकवि जगन्नाथ दास रत्नाकर के शब्दों में कह ही बैठे :–

होती चित चावना जो रावरे चितावन की

तज ब्रज गांव इतै पाँव धरते नहीं।

यह प्रभाव था गोपियों के प्रेम तथा श्रद्धा के अटूट बन्धन का जो ऊधव को भी अपने प्रवाह में बहा ले गया।

श्रद्धा प्रेम का ही एक रूप है। प्रेम की पहिचान है। जहाँ सम्मान का भाव प्रगट होगा, आराध्य के प्रति समर्पण होगा, प्रेमी की चितवन, चाल और स्वाँस ही कुछ अजीब होगी। उसकी प्रत्येक स्वाँस अपने आराध्य के नाम स्मरण में चल रही होगी–
संत कबीरदास ने लिखा है :–

स्वांस-स्वांस में नाम जप, स्वांस न खाली जाय।

ना जाने इस स्वांस कौ, आवन कब रुक जाय।।

हमारे पूर्वजों का कथन था कि हमारी संस्कृति का आधार भोग नहीं, अपितु त्याग रहा है। त्याग से अमृत्व की प्राप्ति होती है। भगवान राम ने लंका को विजय कर बिभीषण को दे दिया– उन्हें वह स्वर्ण मयी लंका अपनी अयोध्या से अधिक आकर्षित नहीं कर सकी क्योंकि –

जननी जन्म भूमिस्य-स्वर्गादपि-गरीयसी

यह भी एक श्रद्धा का उदाहरण है।

महाराणा प्रताप, शिवाजी जैसे मातृभूमि के वीर बहादुरों ने मातृभूमि के लिए क्या–क्या कष्ट नहीं सहे, घास की रोटियाँ खाईं जंगली वातावरण में बरसों रहे, पर मातृभूमि के प्रति श्रद्धा में कमी नहीं आने दी। उनको राज्य का लोभ–प्रलोभन भी नहीं डिगा सका। उन्होंने भारत माता के चरणों में श्रद्धा के साथ अपने प्राणों के पुष्पों की आहुति देदी, पर अपने स्वाभिमान भारतीयता को रखा। एक नहीं अनेक इस प्रकार के चंदगुप्त और चाणक्य जैसे गुरुओं के प्रति श्रद्धा और निष्ठा के उदाहरण हैं जहाँ सामान्य जीवन से ऊपर उठकर महान साम्राज्य के सम्राट बने। भारतीय संस्कृति में श्रद्धा का अपना अलग ही अस्तित्व है। जिसको आज मानव भूल बैठा है जिसके परिणाम स्वरूप भविष्य धूमिल हो रहा है।

आज सेवा का भाव, श्रद्धा का अधिकार ने ले लिया। आचरण का स्थान, भ्रष्टाचार ने ग्रहण कर लिया है। भ्रष्टाचार का रूप, अनैतिक रूप में परिणित हो रहा है। मानवीय जीवन की भावनाओं का मूल्य श्रद्धा पाना नहीं। पैसा ही प्रतिष्ठा श्रद्धा का आधार बन गया है। इस विकृत दृष्टिकोण को भारतीय संस्कृति के आधार पर परिवर्तित करना है। आज का मानव इस भौतिक रूपी मदिरा का पानकर गिरगिट की तरह रंग बदल रहा है। अपने इस मानव जीवन के कल्याण हेतु नहीं सोच पा रहा है। जीवन सत्य तथा मृत्यु असत्य का अनुभव कर रहा है।
गोस्वामी जी के शब्दों में –

बार-बार मुनि जतन कराहीं।

अन्त राम कहि आवत नाहीं।।

हमारे दर्शन शास्त्र, गीता, वेद अनेक ग्रन्थ इसका प्रतिपादन करते है। पर भावी भारत की पीढ़ी आज कहाँ जा रही है। इसका मुख्य कारण धर्म की ओर से उदासीनता है।

आज भी हमारे धर्म गुरु, आध्यात्मिक शिक्षा के द्वारा लोगों को इस पशु प्रवृत्ति से बचाने का निरन्तर प्रयास कर रहे हैं। लोगों में धर्म और प्राचीन संस्कृति के प्रति श्रद्धा एवं आस्था पैदा कर रहे हैं। उनको ज्ञान उपदेशों के द्वारा मानव जीवन की वास्तविकता का अनुभव करा रहे हैं। यह भौतिक सुख क्षण भंगुर एवं कष्टों का जन्म दाता है। जीवन का सत्य आध्यात्मिक रूपी आवरण में छिपा है जिसको बिना गुरुदेव की कृपा के समझना बड़ा ही कठिन है।

आज के युग में भाषा, भाव, एवं शब्दों के शब्दार्थों का अर्थ का अनर्थ हो रहा है।

यह देश का दुर्भाग्य ही है कि जब पश्चिमी देशों का ध्यान भारतीय आध्यात्मिक योग विद्या की ओर आकर्षित हो रहा है, वे सम्पन्नता एवं वैभव के जीवन से ऊबकर भारतीय योगियों की ओर देख रहे हैं, शान्ति एंव जीवन मुक्ति का मार्ग खोज रहे हैं, और हमारा समाज भारतीय गुरुओं के महत्व को भूल रहा है। संत कबीर के शब्दों में –

कबीर सोता क्या करै, काहे न देखै जागि।
जाके संग ते बीछड़ियाँ, ताही के संग लागि।।

उन परम कृपालु गुरुदेव की शरण में आज भी जो आ गये हैं, वे निश्चय ही इस युग के प्रभाव से बच गये हैं। जिनके हृदयों में समर्थ गुरुदेव के प्रति श्रद्धा के अंकुर अंकुरित हैं वे निश्चय ही अपने जीवन को, परिवार को, मुहल्ले को, नगर की, एवं भारतीय आध्यात्मिकी धरोहर को सुरक्षित रखने वाले सैनिकों की भांति है। जो गुरुदेव के संरक्षण में रहकर अपने मानव होने के फल को प्राप्त कर रहे हैं। समय तथा देश की चिन्ता किये बिना, श्रद्धा को इतना प्रबल बनाइयें जिससे साँसारिक आघात फूल की तरह बन जायें।

बलिहारी गुरु आपणौं, द्यौंहाड़ी एक बार।
जिन मानुष ते देवता, करत न लागी बार।।
सतगुरु की महिमा अनत, अनत किया उपकार।
लोचन अनत उघारिया, अनत दिखावन हार।।

संत कबीर का उपरोक्त उदाहरण श्रद्धा का ही एक आन्तरिक रूप है।

श्रद्धा जननी प्रगति की, इसे न जाना भूल।
पाले पोसै हृदय को, खिला बनावे फूल।।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मानसिक सदाचार

श्री परिपूर्णानन्द वर्मा

कानपुर में गङ्गातट पर भगवद्दास घाट प्रसिद्ध है। इस घाट के व्यापारी–बस्ती से निकट होने के कारण यहां अच्छी श्रेणी के लोग स्नान–ध्यान के लिये आते हैं। वहीं जलपान भी होता है। कुछ वर्ष पहले की बात है, इस घाटपर एकपागल–सा साधु रहता था। लोग जलपान कर जो पत्ता या कागज फेंक देते थे, वह उसी को चाटकर या जूठन खाकर वहीं पड़ा रहता था। एक दिन एक बड़ी फर्म के मुनीम जी स्नान कर ध्यान लगाये जप कर रहे थे। यकायक उस पागल ने उनपर एक मुट्ठी मिट्टी फेंक दी। मुनीम जी और अन्य स्नान करने वाले बहुत अप्रसन्न हुए। पागल चुप रहा। मुनीम जी जप में लग गये पागल ने फिर मिट्टी फेंकी। अब उनका क्रोध उस पर बरसने वाला ही था कि पागल ने अपना फटा कम्बल उठाते हुए इतना कहा–' जप कर रहा है, मन जूता खरीद रहा है ! '

मुनीम जी अवाक् रह गये। वास्तविक बात तो यह थी कि जप के समय उन्हें यकायक उस दूकान की याद आ जाती थी जहाँ कल एक जोड़ी जूता का भाव तय कर आये थे और वे जप के समय सोच रहे थे कि दाम कैसे घटाया जाय। पागल को उनके मन की बात कैसे मालूम हुई ? बस, लोगों को विश्वास हो गया कि यह कोई महात्मा है। पर वह पागल लापता हुआ तो फिर कभी न दिखाई पड़ा। इस घटना से प्रकट है कि हम ऊपर से देखने में चाहे कितना भी भले लग रहे हों, मन के भीतर यदि दुराचार है तो हमें सदाचारी नहीं कहा जा सकता। अतएव अच्छा आचरण दिखावे से नहीं, मन से सम्बन्ध रखता है। इसीलिये कबीर साहब ने कहा था–

'मन न रँगाये, रँगाये जोगी कपड़ा। '

इस उदाहरण का ही सार–तत्व है और वह यह कि आचरण मन में है, बाहरी दिखावे में नहीं। जो मन से शुद्ध है, वही सदाचारी है। इसीलिये स्मृतिकारों ने कहा था –

' मनः पूतं समाचरेत् '

मनु. 6 । 46

मन को शुद्ध कर पवित्र आचरण का पालन करे। इसी बात की एक विद्वान् अमेरिकन पादरी–एच. डब्ल्यू. ब्लीचर–(सन् 1813–1877) ने लिखा था – ' मनुष्य की असलियत उसके निजी चरित्र में है। उसका यदि कोई यश है, प्रतिष्ठा है, तो दूसरों की राय मात्र है, दूसरों के उसके प्रति विचार हैं। चरित्र उसके भीतर है। यह प्रतिष्ठा तो छायामात्र है, ठोस वस्तु तो चरित्र ही है। '

जे. हावेज नामक एक विदेशी विद्वान (सन् 1789–1883) ने भी लिखा है – ' मानव का चरित्र कोरे सफेद कागज की तरह से है। एक बार उस पर धब्बा लग गया तो फिर वह पहले जैसा सफेद कभी न होगा। ' अतः चरित्र को सदा निर्मल रखना चाहिए।

धनकुबेर जॉन डि राकफेलर ने युवकों को समझाया था कि ' हरेक युवक के लिये सबसे आवश्यक वस्तु है। चरित्र की साख तथा यश प्राप्त करना। ' और इसी सिलसिले में विद्वान दार्शनिक स्पेंसर की बात याद रखनी चाहिए स्पेंसर (सन् 1798–1854) ने कहा था 'मनुष्य की सबसे बड़ी आवश्यकता शिक्षा नहीं, उसका चरित्र है। वही उसका सबसे बड़ा रक्षक है। ' यदि चरित्र मन की शुद्धि से बनता है तो मन हमारे हृदय पर निर्भर करेगा।

अग्नि पुराण ने तो कह दिया है कि ' बुद्धिमान का ईश्वर हृदय में रहता है, तो फिर यह मान लेना होगा कि जो दुराचार करता है, वह पहले अपने हृदय से ईश्वर को निकाल फेंकता है।

व्यवहार

याज्ञवल्क्यस्मृति में विधि (कानून– LAW) को ' व्यवहार ' कहा गया है और उस महापुरुष ने स्पष्ट कर दिया है कि व्यवहार तथा सदाचार एक ही वस्तु है। जो व्यवहारी है, वह सदाचारी भी है।' व्यवहार–दर्पण ' में सदाचार की व्याख्या में कहा गया है, 'कर्तव्य ' शास्त्रीय, स्वयं–स्थित, सम्राटों का सम्राट, शक्तिशाली, सही तथा सत्य। '

यूनानी दार्शनिक देमोस्थनीज– (इस्वी पूर्व 500 वर्ष) ने लिखा था कि ' विधान ईश्वर तथा साधु–सन्तों की देन है। ' दार्शनिक अरस्तु कहते थे – ' आचार बुद्धि, तर्क तथा ईश्वर के वरदान से प्राप्त होता है। ' वाल्मीक रामायण में तीन प्रकार के कर्म बतलाये गये हैं, नित्य, नैमित्तिक तथा काम्य। अपने जीवन में एक तो वह है जिसे हम नित्य की क्रिया कहते हैं– जैसे स्नान इत्यादि। दूसरा किसी निमित्त, किसी कारण से होता है। तीसरा है काम्य, जो किसी प्रयोजन, इच्छा या संकल्प के कारण होता है। इन तीनों स्थितियों में आचरण की परख होती है। जिसने किसी एक स्थिति में आचरण का ध्यान रक्खा तथा दूसरी स्थिति में आचरण से उदासीन रहा, वह कदापि सदाचारी नहीं है। मनुष्य प्रायः काम्य कर्म में ही अपने पतन की सामग्री पैदा करता है। हम अपने लिये जो चाहते हैं, उस से दूसरे की हानि हो तो होने दो, हमें अपना कल्याण चाहिये। पर मुसलिम धर्म–ग्रन्थ कुरान शरीफ में भी यही लिखा है– जिसकी हजारों वर्ष पहले हमारे शास्त्र भी चेतावनी दे चुके थे– कि ' ऐसा कार्य न करो, जिसे तुम चाहते हो कि दूसरे भी तुम्हारे साथ वैसा न करें '–

आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत्।

(महा. 3/253/44)

छोटी–मोटी सिद्ध प्राप्त करने से न तो मोक्ष होता है और न आचरण बनता है। पतंजलि, बुद्ध तथा आज के युग के श्रीराम कृष्ण परमहंस ने सिद्धि और ऐश्वर्य को कैवल्य

(मुक्ति) में बाधक माना है। श्रीराम कृष्ण परमहंस ने कहा था – ' सावधान रहो ! अपने भीतर को बनाओ। छोटी–मोटी सिद्धियों या ऐश्वर्य के चक्कर में मत पड़ो। ' जैनियों के उत्तराध्ययन–सूत्र में मन:पपर्य को सुक्ति में बाधक माना है। साधु वचन है–

मन के मते न चलिये, पलक, पलक कछु और।

पारसी धर्म, जो हमारे आर्य धर्म की ही एक शाखा है, हमें जीवन के लिये तीन मंत्र देता है – हुमता–सद्‌विचार, हुखता–सत्कथन और हुवशता–सत्कार्य। बस, इन्हीं तीन के पालन से स्वर्ग तथा मोक्ष की प्राप्ति होती है।

उपासना के भाव

सदाचारी को अपने जीवन में एक न एक रेखा बनाकर प्रभु से लगन लगानी पड़ेगी। तभी वह मन के बन्धन से आगे उठकर अच्छे चरित्र का निर्माण कर सकेगा और इहलोक और परलोक को संभाल सकेगा। नीचे लिखे भावों में से एक को अपनाना ही होगा–

शान्त भाव– परमात्मा के प्रति ऋषियों के भाव के समान।

दास्य भाव– श्रीराम के प्रति हनुमान का।

सख्य भाव – श्री कृष्ण के प्रति अर्जुन का।

आपत्य भाव– भगवती के प्रति मार्कण्डेय ऋषि का।

वात्सल्य भाव– बाल कृष्ण के प्रति यशोदा का।

कान्त या माधुर्य भाव – श्रीकृष्ण के प्रति राधा का।

यदि इन में से किसी भाव को नहीं अपनाया तो हमारा कल्याण न हो सकेगा और हमारा जीवन निरर्थक हो जायेगा।

समाज की स्थिति की चिन्तनीय गिरावट केवल सदाचारी की मर्यादा तोड़ने या भूलने के कारण है। हाँ, व्यक्तिगत रूप से वही सदाचारी रह सकता है, जिसको ईश्वर का, अपना, और अपने परलोक का भय है। इसीलिये जर्मन–कवि गेटे ने लिखा था–' जो कुछ वास्तविक है,वह अपनी करनी है। अपना आचरण है। बाकी सब मिथ्या है। '

सन्त सुकरात ने आज से ढ़ाई हजार वर्ष पहले कहा था। ' हे भगवान ! मुझे वही दे, जो मेरी भलाई में हो। ' जहाँ तक जीवनयापन का सम्बन्ध है, हमें भगवान से यही प्रार्थना करनी चाहिए कि–

' कायेन वाचा मनसेन्द्रियर्यर्वा '

शरीर, वचन, मन तथा इन्द्रियों से जो भी अपराध हमने किया है, उन्हें वे क्षमा करें, आगे हमसे ऐसी भूल–चूक न होगी। हमारा मन शुद्ध रहे, हम अच्छा संकल्प किया करें, जिससे हमारा आचार भला हो। वस्तुत: यही मानस सदाचार है।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

साधन-सिद्धि का उपाय

श्री सुरेन्द्र बहादुर सिंह एम.ए.

महर्षि पतंजलि जी ने साधन को दृढ़ बनाने तथा उसको सिद्धि की चरम सीमा तक ले जाने का उपाय बतलाते हुए लिखा है –

सतु दीर्घकालनैरन्तर्य सत्कारा सेवितो दृढ़भूमिः।

इस सूत्र का तात्पर्य यह है कि अभ्यास को दृढ़ भूमि बनाने के लिये धैर्य के साथ दीर्घ काल पर्यन्त निरन्तर आदरपूर्वक प्रयत्न करते रहना चाहिये। इस सूत्र में तीन बातें बताई गई हैं– (1). दीर्घकाल, (2). निरन्तर, तथा (3). श्रद्धा और उत्साह।

दीर्घकाल – साधना में काल की कोई सीमा नहीं। काल की अवधि साधक के अन्तःकरण की भूमिका पर निर्भर रहती है। यदि किसी साधक का अन्तःकरण अधिक निर्मल है तो उसे अभ्यास की दृढ़–भूमि बनाने में कम समय लगेगा, किन्तु जिसका अन्तःकरण अपेक्षाकृत कम निर्मल है, उसे अधिक समय लगेगा। इसके अतिरिक्त जिन साधकों ने पूर्व जन्म में साधना की कुछ मंजिलें तय करलीं हैं उनकी अपेक्षा उन साधकों को अधिक समय लग सकता है जिन्होंने पूर्व जन्म में इस प्रकार की कोई मंजिल तय नहीं की है। इसके अतिरिक्त जिस साधक में वैराग्य की मात्रा अधिक होती है, वह अन्य लोगों की अपेक्षा थोड़े ही समय में अपनी साधना की सिद्धि को प्राप्त कर लेता है। अतः साधन के लिये कुछ महीनों या वर्षों की सीमा नहीं बाँधी जा सकती। साधक को महीनों और वर्षों तो क्या कई जन्मों के लिए कमर कसकर तैयार होना पड़ेगा। भगवान श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है –

अनेकजन्मसंसिद्धिः ततो याति परांगतिम्

अर्थात् अनेक जन्मों से अन्तःकरण की शुद्धि रूप सिद्धि को प्राप्त हुआ और तीव्र प्रयत्न से अभ्यास करने वाला योगी सम्पूर्ण पापों से अच्छी प्रकार शुद्ध होकर, उस साधन के प्रभाव से परम गति को प्राप्त होता है। कुछ लोग दीर्घकाल का नाम लेते ही चौंक जाते हैं, निराश हो जाते हैं और परिणामतः या तो साधना प्रारम्भ ही नहीं करते या प्रारम्भ करते भी हैं तो उसे बीच में ही छोड़ बैठते हैं। ऐसा करने के तीन कारण मुख्य हैं – (क). श्रद्धा की न्यूनता, (ख). धैर्य की कमी, और (ग). गुरु में भक्ति का अभाव। इन तीनों कारणों पर हम आगे चलकर विचार करेंगे।

नैरन्तर्य – साधना को निरन्तर बिना नागा किये करते रहना चाहिए यदि किसी साधक ने एक सप्ताह अभ्यास किया और उसके पश्चात एक दिन नागा कर दी, तो उसका करना और

न करना बराबर हो गया। किन्तु इसका अर्थ यह नहीं लगा लेना चाहिए कि उस एक सप्ताह में उसने कुछ प्रगति की ही नहीं। उसने प्रगति अवश्य की किन्तु नागा कर देने के कारण उसकी प्रगति में एक भारी अवरोध आ गया। अतः साधक के लिए यह अनिवार्य हो जाता है कि वह अपने अभ्यास को निरन्तर अर्थात लगातार करता चला जाये।

श्रद्धा और उत्साहः – साधक को चाहिये कि वह अपने अभ्यास को आदर पूर्वक और प्रेम के साथ करें नहीं तो अपने लक्ष्य में चित्त को एकाग्र रखना कठिन हो जायगा। जो अभ्यास आदर, भाव, और प्रेम पूर्वक किया जाता है वह अभ्यास सफल होता है। अभ्यास को आदर पूर्वक और बिना उकताए हुए चित्त से जारी रखने के लिए धैर्य श्रद्धा, धैर्य तथा गुरुदेव के वचनों में अटूट विश्वास अत्यन्त आवश्यक है। गीता में भगवान श्री कृष्ण ने कहा है कि :–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।

ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिम चिरेणाधिगच्छति।।

अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति।

नायंलोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः।।

हे अर्जुन ! जितेन्द्रिय तत्पर हुआ श्रद्धावान पुरुष ज्ञान को प्राप्त होता है, ज्ञान को प्राप्त होकर लक्षण भगवत् प्राप्ति रूप परम शान्ति को प्राप्त हो जाता है। हे अर्जुन भगवत् क्रिया को न जानने वाला तथा श्रद्धा रहित और संशय युक्त पुरुष के लिए न तो सुख ही, और न यह लोक है और न परलोक अर्थात् यह लोक और परलोक दोनों ही उसके लिए भ्रष्ट हो जाते हैं।

सत्वा नुरूपा सर्वस्य श्रद्धा भवति भारत।

श्रद्धामयोऽयं पुरुषः योययच्छऽद्धः स एव सः।।

अर्थात्, मनुष्य की श्रद्धा उसके सत्व के अनुरूप ही होती है। जो जिस प्रकार की श्रद्धा वाला होता है वह वैसा ही हो जाता है।

इस श्लोक से यह तो स्पष्ट सिद्ध हो जाता है कि श्रद्धा का उद्गम स्थान सतो गुण है। जिसमें जितना ही अधिक सतो गुण की मात्रा होगी उसमें श्रद्धा का परिणाम भी उतनी ही अधिक मात्रा में अधिक होगा। अतः अपनी श्रद्धा को दृढ़ तथा उत्कृष्ट बनाने के लिए साधक को सतोगुण का अधिकाधिक विकास करना चाहिए और मन की सजीव राजसी तथा तामसी वृत्तियों पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

श्रद्धा मातेव योगिनं पाति।

अर्थात्, श्रद्धा माता की तरह योगी की रक्षा करती है। जिस योगी में अपनी साधना के प्रति श्रद्धा नहीं है उसका रक्षक भी कोई नहीं होता यही कारण है कि वह अपने मार्ग से फिसला

रहता है धीरे–धीरे निराशा उसको घेरने लगती है और अन्त में वह उस साधना को छोड़कर दूसरी साधना को ग्रहण करता है। इस प्रकार वह एक के बाद दूसरी साधनाएँ ग्रहण करता चला जाता है और सफलता उसे किसी भी साधना द्वारा प्राप्त नहीं होती। इसी असफलता को लिये हुए अन्त में वह अपनी जीवन यात्रा समाप्त कर देता है। भगवान् श्री कृष्ण गीता में कहते हैं–

श्रेयान्यस्वधर्मों विगुण: परधर्मात्स्वष्ठितात्।

अर्थात्, अपना मार्ग दूसरे मार्ग की अपेक्षा भले ही कम आकर्षक तथा अधिक श्रम साध्य जान पड़े तो भी उसमें लगे रहने में ही साधक का कल्याण है। साधक का मन दूसरी साधना को अधिक आकर्षक तथा सहज साध्य मानकर उसको बहकाता है। किन्तु सावधान !

स्वधर्मे निधनश्रेय: परधर्मो भयावह:।

अपनी ही साधना करते यदि आयु भी समाप्त हो जाये तो भी साधक का कल्याण ही है। किन्तु अपनी साधना को छोड़कर दूसरी साधना को ग्रहण करना विषयजनक है। योगी जब योग के मार्ग पर पैर रखता है तो वह इस पूर्व मान्यता के साथ आगे बढ़ता है। कि –

योग सिद्धान्तों के अतिरिक्त अन्य सारे सिद्धान्त उसके लिए महत्वहीन हैं। वह अन्य सिद्धान्तों तथा अन्य साधनाओं की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखता और न तो उन की चर्चा ही सुनना चाहता है।

जो साधक चार– छै महीने या दो–चार वर्ष साधना करने के पश्चात यह विचार करने लगता है कि उसने इतने दिनों तक साधना की किन्तु परिणाम कुछ भी दिखलायी नहीं देता, ऐसा साधक ही अपने धैर्य को खो बैठता है। किन्तु यह सब होता है उसकी श्रद्धा के कारण। साधक को योग वाशिष्ठ का यह श्लोक नहीं भूलना चाहिए :–

कालेन परिपच्यन्ते कृषि गर्भादयो यथा।

एवमात्म विचारोऽपि शनैः कालेन पच्यते।।

अर्थात्, जैसे बीज बोने के बाद अंकुर निकलने में देर लगती है और माता के उदर में गर्भ के परिपक्व होने में समय लगता है, उसी प्रकार साधना के परिपक्व होने में समय लगता है।

हम ऊपर बतला चुके हैं कि साधक के चित्त की स्वस्थता अथवा अस्वस्थता ही इसके साधन की परिपक्वता में शीघ्रता अथवा विलम्ब के लिए उत्तरदायी हैं। उदाहरण के लिए हम साधक के चित्त की उपमा बीज से देते हैं। एक गेहूँ का बीज तीन या चार दिनों में ही अंकुरित हो जाता है किन्तु एक बेर के बीज के अंकुरित होने में कई महीने लग जाते हैं। अत: जिस प्रकार भिन्न बीजों के अंकुरित होने में भिन्न समय लगता है उसी प्रकार भिन्न साधकों की साधनाएँ भी भिन्न समयों में सिद्ध होती हैं। यह सब साधक के श्रम तथा उसका तीव्र मध्य अथवा मृदु संवेग से की गयी साधना पर निर्भर रहता है। अत: साधक को किसी भी दशा में अकुलाने और निराशा

होने की आवश्यकता नहीं है।

साधन– साधना में श्रद्धा की कमी का कारण गुरु भक्ति का अभाव भी है। हमारे शास्त्रों में कहा गया है :–

यस्य देवे परा भक्तिर्यथा देवे तथा गुरौ।

तस्यैते कार्यता ह्यर्था प्रकाशयन्ते महात्मनः।।

अर्थात्, जिस साधक का ईश्वर में पूर्ण अनुराग होता है और उसकी जिस प्रकार की अटूट श्रद्धा ईश्वर में है उसी प्रकार गुरु देव में भी है उसको जो साधना बताई जाती है वही सिद्ध होकर परमात्मा का साक्षात्कार करा देती है। इस प्रकार का साधक न तो अपनी साधना में कभी न्यून भाव ही रखता है और न किसी दूसरी साधना को ग्रहण करने की बात ही सोचता है। श्रद्धावान साधक अपनी साधना को सर्वश्रेष्ठ समझता है किन्तु अन्य साधनाओं से द्वेष नहीं करता, वरन् गौण मानता है।

साधना में अडिग धैर्य तथा अटूट विश्वास की आवश्यकता होती है। एक गुरु के कई शिष्य एक साथ एक ही प्रकार की साधना आरम्भ करते हैं। उनमें से कुछ को तो शीघ्र ही अनुभव जारी हो जाते हैं, कुछ को देर से और कुछ को कभी नहीं। इसके अतिरिक्त उनमें से कुछ को उच्चकोटि के अनुभव होते हैं कुछ को मध्यम कोटि के और कुछ को बिल्कुल नहीं। ऐसी हालत में यह सम्भव है कि जिन साधकों को कभी कोई अनुभव नहीं हुआ वे एक दम निराश हो जायें, और जिन्हें मध्यम कोटि का तथा देर से अनुभव हुआ वे थोड़ा निराश होने लगें। किन्तु इन दोनों कोटि के लोगों का निराश होना एक दम गलत है। उन्हें यह नहीं मान लेना चाहिए कि उन्होंने अपनी यात्रा की कुछ मंजिल तय नहीं की या बहुत थोड़ी मंजिल तय की। यदि तीनों ने एक ही साधना बराबर समय तक की तो तीनों को बराबर फल मिलेगा इसमें कोई सन्देह नहीं। पर प्रश्न उठता है कि परिश्रम का परिणाम बराबर क्यों नहीं दीखता। इस प्रश्न का उत्तर हम एक उदाहरण द्वारा देने का प्रयत्न करते हैं। मान लीजिए तीन व्यक्ति किसी सेठ के यहाँ नौकरी करते हैं प्रत्येक को उस सेठ से दो सौ रुपये मासिक मिलने की बात तय है। उन तीनों में से दूसरे व्यक्ति के पिता ने सेठ से एक सौ रुपया कर्ज लिया तथा तीसरे व्यक्ति के पिता ने दो सौ रुपये कर्ज लिया था किन्तु प्रथम व्यक्ति के ऊपर कोई कर्ज नहीं था। किन्तु इस बात को सेठ के सिवाय कोई नहीं जानपाया। मास के अन्त में सेठ ने पहले व्यक्ति को दो सौ रुपया तथा दूसरे व्यक्ति को एक सौ रुपया किन्तु तीसरे को कुछ भी नहीं दिया। क्योंकि उसने दूसरे व्यक्ति का एक सौ रुपया कर्ज तथा तीसरे व्यक्ति का दो सौ रुपया कर्ज काट लिया। इस तरह यद्यपि सेठ ने तीनों को बराबर पारिश्रमिक दिया किन्तु अपनी अनभिज्ञता के कारण दूसरे तथा तीसरे व्यक्ति निराश हुए। अब यदि ये तीनों व्यक्ति निराश न होकर अपने कार्य में लगे रहें तो तीनों को दूसरे मास के अन्त में समान परिणाम दिखाई देगा।

धैर्य के सम्बन्ध में स्वामी श्री चिदानन्द जी सरस्वती ने एक बड़ा अच्छा दृष्टान्त दिया है जो उन्हीं के शब्दों में इस प्रकार है।

" एक अच्छे तराजू को डोरी से ठीक बाँधकर कहीं इस प्रकार टाँग दो कि जमीन से वह कुछ ऊपर रहे। एक पलड़े में चालीस तोले के वजन का एक बाँट रख दो। अब इसी भार के चने दूसरे पलड़े पर रखने हैं। प्रतिदिन एक–एक चना रखें तो चने का एक बाल होता है और 32 बाल का एक तोला होता है। इस हिसाब से एक तोले में 96 चने आयेंगे और 40 तोला बराबर होगा 3840 चनों के। अब 360 दिन का एक वर्ष होता है, तो 10 वर्ष में 3600 दिन होंगे। बाकी बचे 240 चने। उसके 30 दिन के एक मास के हिसाब से 8 मास होते हैं। अर्थात् रोज 1 चना रखने से पलड़े पर उस बांट के वजन के चने 10 वर्ष 8 मास में पूरे होंगे और तब दोनों पलड़े सम रेखा में आ जायेंगे। दूसरे दिन 1 चना और रखने से चने वाला पलड़ा नीचे झुक जायगा और बांट वाला पलड़ा ऊपर उठ जायगा, इसी प्रकार यदि हम प्रतिदिन साधना करते जायें और वह भाव से तथा प्रेम पूर्वक हो तो धीरे–धीरे पुराने संस्कार धुलते जायेंगे। और नये संस्कार पड़ते जायेंगे। यह काम चनों के समान बहुत धीरे–धीरे होता है। इसमें कितनी प्रगति हो रही है, यह जानने का कोई साधन नहीं है। इसी के कारण साधक घबरा जाता है और अधिक से अधिक चार–पाँच वर्ष साधना करके फिर उसे छोड़ देता है। ऊपर के दृष्टांत में हमने स्पष्ट देखा है कि जो कार्य धीमी गति से होता है, वह पूरा होता है। तभी उसकी सिद्धि देखने में आती है, यही बात साधना में भी समझनी चाहिए। चित्त का संस्कार अवश्य धुलता है, नया शुभ संस्कार पड़ता जाता है। पुराने जब तक सारे संस्कार धुल न जाये और उसके स्थान शुभ संस्कार दृढ़ न हो जाय, तब तक कोई परिणाम देखने में नहीं आता।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

मुक्ति का स्वरूप

श्री सूर्य प्रसाद उपाध्याय

भारत भूमि आदिकाल से ही मुक्ति स्थान मानी जाती है। जितने भी संत महात्मा इस धरती पर अवतरित हुए उनका प्रधान लक्ष्य मुक्ति प्राप्त करना ही रहा। उन्होंने उसी की प्राप्ति का चरम लक्ष्य मनुष्य के समक्ष उपस्थित किया। शताब्दियाँ ही नहीं अपितु, सहस्त्राब्दियाँ व्यतीत हुई मुक्ति की खोज करते, परन्तु मानव उनके स्वरूप को भली प्रकार नहीं पहचान सका। मैं यह जन साधारण के लिए कह रहा हूँ। ज्ञानी, ध्यानी, समाधिष्ठ संतों के लिए नहीं। उन्होंने अपनी तपस्या द्वारा परम लक्ष्य की प्राप्ति कर ली। कुछ ने तो अपनी साधना सिद्धि को अपने तक ही सीमित रखा, पर कुछ ने उसे जन साधारण तक पहुँचाने की चेष्टा की।

उनके भाव व्यक्त करने की प्रथा भी भिन्न है। भिन्न-भिन्न रूप से ज्ञानी सन्तों ने मुक्ति की प्राप्ति बतलाई है। सर्व प्रथम विचारणीय विषय यह है कि, वास्तव में मुक्ति है क्या ? मुक्ति शब्द का शाब्दिक अर्थ होता है, छुटकारा। छुटकारा अर्थात् किससे छुटकारा पाना ? उत्तर प्राप्त होता है संसार के आवागमन से। क्यों ?

गोस्वामी जी ने लिखा है –

जन्मत मरत दु:सह दुख होई।

अर्थात् जन्म लेते समय तथा मरते समय असहनीय कष्ट होता है। परन्तु कितने ही महात्माओं ने यहाँ तक कि गीता में भी स्वयं आनन्दकन्द भगवान कृष्ण ने कहा है –

' न जायते भ्रियते वा कदाचित् '

अर्थात् आत्मा ' अविनाशी '' अनश्वर ' तथा अजन्मा है। जब यहाँ कई प्रकार के भ्रम पैदा हो जाते हैं तब पूर्ण रीति से निर्णय का पाना बड़ा ही कठिन है।

मुक्ति के पूर्व यह विचार करना उचित है कि, जिस वस्तु से हम छुटकारा पाने का सतत् प्रयत्न करते हैं वह वस्तु है क्या ? अन्दर से यही ध्वनि निकलती है ' बन्धन '। अर्थात् कोई एक ऐसा अटूट बन्धन है जिससे छुटकारा पाने हेतु मानव व्यग्र रहता है। वह बन्धन क्या है ? उसका स्वरूप कैसा है ? विषय विचारणीय है।

भारतीय दर्शनों की एक मान्यता यह भी है कि वे अज्ञान को बन्धन का कारण मानते हैं, अर्थात् तत्त्व ज्ञान के अभाव से ही शरीर का बन्धन होता है और दु:खों की उत्पत्ति होती है। इनसे मुक्ति तभी मिल सकती है जब संसार तथा आत्मा का तत्त्वाज्ञान प्राप्त हो पुनः पुनः जन्म ग्रहण करना तथा जीवन के दुखों को सहना ही मनुष्य के लिए बन्धन है। पुनर्जन्म की संभावना का नाश

मोक्ष से ही हो सकता है। जैनमत बौद्ध मत, सांख्य तथा अद्वैत वेदान्त के अनुसार मोक्ष की प्राप्ति जीवन के रहते भी हो सकती है। अर्थात् यथार्थ सुख जीवन–काल में भी प्राप्त हो सकता है।

बन्धन से मोक्ष प्राप्त करने की जो शिक्षा दी गई है उसका तात्पर्य यह नहीं कि हम संसार से पराङ्मुख हो कर केवल परलोक चिन्ता में लगे रहें। पर इसका तात्पर्य यह है कि इहलोक तथा इहकाल को अधिक महत्व न दें। अपनी दृष्टि से केवल इस लोक में सीमित न रक्खें और अदूरदर्शिता से बचें।

जीवन के आदर्श से प्राप्त करने के लिए एकाग्र चिन्तन तथा ध्यान की इतनी अधिक आवश्यकता है कि भारतीय दर्शन में इनके लिए एक बड़ी साधना पद्धति का विकास हुआ है। इस पद्धति का विस्तृत वर्णन योग–दर्शन में मिलता है। किन्तु इससे यह नहीं समझना चाहिए कि इसका वर्णन केवल योग–दर्शन में ही पाया जाता है। बौद्ध, जैन, सांख्य वेदान्त तथा न्याय वैशेषिक दर्शनों में भी इसका वर्णन किसी न किसी रूप में पाया जाता है। केवल कोरे तत्त्वाज्ञान से ही अज्ञान (बन्धन) का नाश नहीं होता। भ्रान्त संस्कार वश दैनिक जीवन बिताने के कारण हमारा अज्ञान और बद्धमूल हो जाता है। इसलिए हमारे विचार, वचन तथा कर्म अज्ञान के रंग में रंग जाते हैं। फल यह होता है कि विचार, वचन तथा कर्म से भ्रष्ट होने के कारण अज्ञान और भी दृढ़तर होता जाता है। ऐसे प्रबल अज्ञान का निराकरण करने के लिए तत्त्वज्ञान का निरन्तर अनुशीलन आवश्यक है। अतः जब तक तृष्णाओं तथा नीच प्रवृत्तियों का पूर्ण नियन्त्रण नहीं हो तब तक हमारे कर्म सर्वथा नैतिक या धार्मिक नहीं हो सकते। इस विचार को चार्वाक के अतिरिक्त और सभी भारतीय दर्शन स्वीकार करते हैं। ठीक ही कहा है :–

जानामि धर्म न च मे प्रवृत्तिः, जानाम्यधर्म न च मे निवृत्तिः।

चार्वाक जड़वादी है। उसके अनुसार प्रत्यक्ष ही एक मात्र प्रमाण हैं। अनुमान शब्द आदि जितने अप्रत्यक्ष प्रमाण हैं सभी अमान्य तथा भ्रम मूलक हैं। प्रत्यक्ष के द्वारा हमें भौतिक जगत् का ज्ञान मिलता है। चार भौतिक तत्वों का ज्ञान हमें इन्द्रियों द्वारा ही होता है आत्मा के तत्त्व के लिए कोई भी प्रमाण उनके यहाँ नहीं है। उनके इन विचारों से ईश्वर की आराधना तथा मोक्ष की कल्पना सभी व्यर्थ है। जैन दर्शन भी यही मानता है कि हमारे तीर्थङ्करों ने जो उपदेश दिया है वही प्रमाण है ईश्वर की सत्ता उनकी दृष्टि में कुछ भी नहीं हैं केवल उनके 24 तीर्थङ्करों के वचन ही सब कुछ हैं।

बौद्ध दर्शन ने जिन चार आर्य सत्यों को ढूँढ़ा वह यह है, (1). दुःख, (2). दुःख का कारण है, (3). दुःख का अन्त है, (4). दुःख दूर करने का उपाय है। वे मानते हैं कि संसार में सभी वस्तु परिवर्तनशील हैं। इस प्रकार जरामरण का भी कारण है।

हमारे जन्म का कारण हमारी तृष्णा

जो हमें सांसारिक विषयों की ओर खींचती है, इसका कारण हमारा अज्ञान है। जब हमें इस क्षणिक सुख–दुःख का ज्ञान हो जाए तब हमारा पुनर्जन्म नहीं होता और इस तरह दुःखों का अन्त

हो जाता है।

न्याय दर्शन का लक्ष्य आत्मा को शरीर इन्द्रियों तथा सांसारिक विषयों के बन्धन से मुक्त करना है। आत्मा शरीर और मन से भिन्न हैं। मन एक अणु है जो सूक्ष्म नित्य तथा अविभाज्य है। मन परमाणु के सदृश सूक्ष्मतम है किन्तु आत्मा विभु अमर तथा नित्य है। मिथ्या ज्ञान राग–द्वेष तथा मोह के कारण आत्मा को दुःख ग्रस्त होना पड़ता है। इन्हीं के कारण उसे जन्म मरण के चक्कर में पड़ना पड़ता है। तत्त्व ज्ञान के द्वारा जब दुःखों का अन्त होता है तो मुक्ति प्राप्त होती है।

वैशेषिक दर्शन गुण और धर्म को ही प्रधान मानता है। ईश्वर तथा मोक्ष के विषय में वैशेषिक तथा न्याय में पूर्ण साम्य है।

सांख्य दर्शन द्वैतवादी है। वह दो तत्त्व से सृष्टि रचना को मानता है प्रकृति एवं पुरुष को ज्यों हम पुरुष का शरीर इन्द्रिय, मन, अहंकार तथा बुद्धि से भेद समझने लगते हैं ज्योंही हम हमारे सुखों तथा दुःखों का अन्त हो जाता है। तब पुरुष का संसार के साथ कोई अनुराग नहीं रहता और यह संसार के घटना–क्रम का साक्षी या दृष्टा रह जाता है। इस अवस्था को मुक्ति या कैवल्य कहते हैं।

महर्षि पतंजलि योग दर्शन के प्रदर्शक हैं। योग तथा सांख्य में बहुत साम्य हैं। योग–दर्शन का प्रमुख विषय योगाभ्यास है। सांख्य के अनुसार मोक्ष प्राप्ति का प्रमुख साधन विवेक ज्ञान है। विवेक ज्ञान की प्राप्ति प्रधानतः योगाभ्यास से ही हो सकती है। योग चित्तवृत्ति के निरोध से प्रारम्भ होता है।

योग दो प्रकार का होता है– संप्रज्ञात तथा असंप्रज्ञात। संप्रज्ञात उस योग या समाधि को कहते हैं, जिसमें चित्त ध्येय विषय में पूर्णतया तन्मय हो जाता है, जिससे चित्त को उस विषय का पूर्ण तथा स्पष्ट ज्ञान होता है। असंप्रज्ञात उस योग को कहते हैं जिससे मन की सभी क्रियाओं का निरोध हो जाता है। फलस्वरूप ध्येय विषय के साथ, अन्य सभी ज्ञान का लोप हो जाता है।

योग के आठ अंग ' यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान तथा समाधि है।

इसमें मुझे केवल दो विषयों पर ही कुछ प्रकाश डालना है। किसी विषय का सुदृढ़ तथा अविराम चिंतन ' ध्यान ' कहलाता है।' समाधि ' चित्त की वह अवस्था है जिसमें ध्यान शील चित्त ध्येय विषय में तल्लीन होकर आत्म विस्मृत हो जाता है।

अतः ध्यान और समाधि के द्वारा ही मनुष्य परम लक्ष्य मुक्ति के द्वार तक पहुँच सकता है अन्य मार्ग से नहीं।

पतंजलि ने कहा है :–

ततः क्लेश कर्म निवृत्तिः

अर्थात् उस धर्ममेघ समाधि से क्लेश और कर्मों की निवृत्ति होती है। उस धर्ममेघ समाधि की प्राप्ति पर अविद्या आदि पाँचों क्लेश और शुक्ल कृष्ण, तथा मिश्रित तीनों प्रकार के कर्म

(सकाम कर्म) और उनकी वासनायें मूल सहित नाश हो जाती हैं। इस प्रकार कर्मों और क्लेशों के अभाव में योगी जीवन्मुक्त होकर विचरता है और शरीर त्यागने के पश्चात् विदेह युक्त पद को प्राप्त होता है। अर्थात् पुनः जन्म धारण नहीं करता। जैसा कि भाष्यकार ने लिखा है –

कस्माद् यस्माद्विपर्ययो भवस्य कारणं,

न हि क्लेश विपर्ययः कश्चित् केन चित्क्कचिज्जातो दृश्यत्ते इति।

क्योंकि विपर्यय ज्ञान अर्थात् अविद्या ही संसार का कारण है। इसलिए अविद्यादि क्लेश नष्ट हो गये है ऐसा पुरुष कोई भी किसी कारण से भी कहीं भी उत्पन्न हुआ नहीं देखा जाता। महर्षि गौतम ने भी न्याय–दर्शन में ऐसा ही कहा है –

वीतरागजन्मादर्शनात् (3/125)

जिसके राग बीत गये है ऐसे पुरुष का संसार में जन्म न देखे जाने से ही सिद्ध होता है। पुनः प्रश्न भी उठता है। क्लेश कर्म की निवृत्ति पर क्या होता है –

तदा सर्वावरण मलापेतस्य

ज्ञानस्यानन्त्या ज्ज्ञेयमल्पम्।

चित्त सत्त्व प्रधान सूर्य सदृश प्रकाश शील है। जिस प्रकार शरद ऋतु में मेघ सूर्य के प्रकाश को ढक लेते हैं उसी प्रकार रजस् मूलक अविद्या आदि क्लेश और समान कर्म की वासनायें चित्त में प्रकाश पर आवरण डाले हुए हैं बादलों के हट जाने पर सूर्य का प्रकाश चारों दिशाओं में फैल जाता है। इसी प्रकार धर्ममेघ समाधि द्वारा क्लेश और कर्म वासनाओं के मल का पर्दा चित्त से हट जाता है। तो उसके अपरिचित प्रकाश में कोई वस्तु छिपी नहीं रहती, इस पर एक छोटा सा दृष्टान्त है –

अन्धो मणिमविध्यत्तमन ङ्गूलिरा वयत्

अग्रीवस्तं प्रत्यधच्च्वत्तम जिह्वोऽभ्यूजयग्र।

अन्धे ने मणि को बीधे विना अङ्गलि वाले ने उसमें धागा पिरोया ग्रीवा रहित के गले में वह डाली गयी और जिह्वा रहित ने उसकी प्रशंसा की। जिस प्रकार यह वाक्य आश्चर्य रूप जान पड़ता है ऐसे ही आश्चर्य रूप दशा योगी की इस काल में होती है।

अतएव प्रत्येक साधक को गुरु द्वारा बतलाये हुए मंत्रों का आने तक अविरत जाप, ध्यान तथा गुरुश्रद्धा और भक्ति में अविचल आस्था रख योग मार्ग पर अग्रसर होना चाहिए।

ऊपर बतलाये हुए मार्ग ही मानव को मुक्ति–द्वार तक अवश्य पहुँचा देंगे। शेष गुरु–कृपा।

ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः

तपोमूर्ति स्वर्गीय बहिन श्री द्रोपदीदेवी

आश्रम से सम्बद्ध सभी सत्संगियों को ज्ञात ही है कि मेरी आदरणीया बड़ी गुरु–बहिन तपोमूर्ति सुश्री द्रोपदीदेवी जी ने अपने नश्वर देह को अपने मन के दृढ़ संकल्पानुसार अपने पवित्र गुरु–धाम सवाई आश्रम में आ करके त्याग दिया।

यद्यपि बहिनजी काफी दिन से अस्वस्थ चल रही थीं और उनका शरीर यात्रा की तकलीफें सहन करने लायक नहीं था, फिर भी जैसा कि वे सवाई आश्रम में श्री प्रभुजी के जयन्ती पर्व पर प्रायः प्रति वर्ष अपने भावपूर्ण संकीर्तन से घण्टों तक निरन्तर भगवान के प्रेम में विभोर होकर उपस्थित सत्संग–प्रेमियों को भाव–विभोर बना दिया करती थीं इसी भाव से प्रेरित होकर शरीर की अत्यन्त क्षीण स्थिति होते हुए भी अमृतसर से चल पड़ी थीं और मार्ग की दिक्कतों को सहन करते हुए सवाँई आश्रम आ पहुँची थीं।

जिस समय आदरणीया बहिन आश्रम पहुँची, उस समय उनका कण्ठ अवरुद्ध था। मैंने उनसे कहा – आप ऐसी स्थिति में क्यों आयीं ? उन्होंने मेरे मन के उत्साह को बढ़ाते हुए उत्तर दिया – ' नहीं भाई जी ! इस समय मैं रास्ते की थकावट से ऐसे दिखलाई दे रही हूँ, मैं कल मंच पर अवश्य बोलूँगी। ' इन्हीं दिनों एक और वज्राघात अपने ऊपर हो चुका था। यह था गोपालगंज (बिहार) के जिलाधिकारी चि. महेशनारायण की हिंसा का जो किसी नृशंस स्वार्थ–लोलुप हत्यारे ने बम फेंक कर करदी थी। मैं वहाँ जाकर अपने बच्चों को देखने की गरज से गोपालगंज जाने के विचार में था और यह सोच रहा था कि बहिनजी आश्रम पहुँच चुकी हैं, अतः गोपालगंज जाने में मुझे कठिनाई न होगी। मेरी अनुपस्थिति में बहिन जी सत्संग का संचालन करती ही रहेंगी। बहिन जी ने भी इन मेरे मनोभावों को जानकर बड़ी प्रसन्नता के साथ मुझे आज्ञा दी– भाई जी ! आप निस्संकोच चले जाएँ। उनकी प्रसन्नतापूर्वक इस उत्साहवर्द्धक आज्ञा को सुनकर मैं गोपालगंज चला गया और आश्रम के ब्रह्मचारियों को आज्ञा दे गया कि सब बहिन जी की सेवा में तत्पर रहें व उनको किसी भी प्रकार की तकलीफ होती दिखाई दे तो उचित औषधोपचार भी करते–कराते रहें। किन्तु किसी को क्या पता था कि सुश्री बहिनजी किस संकल्प को लेकर आश्रम पहुँची हैं। मेरे जाने के कुछ ही समय बाद मुस्कराते हुए सभी से उन्होंने कहा– ' मेरी तो प्रभुजी ने सुन ली। मेरे लिये बहुत ही अच्छा हुआ कि मुझे गुरु–धाम मिल गया, रही अमृतसर के सत्संग की कुछ लड़कियों की बात वे याद करेंगी। लेकिन कोई बात नहीं, मुझे गुरु–धाम मिल गया।

उनकी इस वाणी को देखकर किसी के मन में यह विश्वास नहीं था कि वे अब जाने की तैयारी में हैं। विचार प्रकट करने के बाद श्री बहिनजी ने निरन्तर प्रभु स्मरण आरम्भ कर दिया और रात को लगभग 2 बजे अपने नश्वर देह का त्याग कर दिया। किसी को क्या पता था कि श्री बहिन जी अपनी पूरी–पूरी तैयारी के साथ गुरु–धाम में हम सबको अन्तिम दर्शन देने आई हैं। तत्काल अमृतसर फोन किया गया और वहाँ के उनके सत्संगियों की प्रबल इच्छा को

जानकर उनके मृत शरीर को अमृतसर ले जाया गया। वहीं उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की सम्पन्नता हुई। अमृतसर जाने पर मुझे उनके अत्यन्त प्रिय छोटे भाई आयुष्मान धर्मपाल के मुख से पूरी–पूरी बातों का पता चला। सभी को बड़ा आश्चर्य था कि श्री बहिनजी सवाई केवलमात्र धाम–दर्शन के लिये आयी थीं। अपने छोटे भाई धर्मपाल को पूरी तरह समझा आई थीं कि मेरी अन्त्येष्टि इस–इस प्रकार से करना। यह कपड़े और यह सामग्री महापात्र को दे देना। इतना–इतना तेरहवीं के दिन खर्च करना। यह रुपये हैं इस–इस प्रकार भंडारा करना इत्यादि। भविष्य की सभी बातें समझा कर धाम–दर्शनार्थ यहाँ चली आई थीं। इससे यह बिल्कुल स्पष्ट हो जाता है कि परम आदरणीया श्री बहिनजी को भावी होनहार का पहले से ही पूरा–पूरा ज्ञान था। और इसी भावना को लेकर वे आश्रम पहुँची थीं। अस्तु, जैसी उनकी मन की भावना थी वैसा ही हुआ। इस अवसर पर थोड़ी सी बातें मैं श्री बहिनजी के पवित्र जीवन के विषय में भी बतलाये बिना नहीं रह सकता। उनकी पवित्र जीवनी तो बाद में पूरी–पूरी जानकारी के साथ लिखने का प्रयत्न करेंगे। किन्तु मैंने अपनी आँखों से जिस प्रकार उनके जीवन के पवित्र भाग को देखा और जिस प्रकार उन्होंने जीवन को तपोमय व्यतीत किया एवं भगवान की पूरी कृपा और श्री प्रभुजी के महान अनुग्रह उन पर होते रहे वे सभी बातें साधारण नहीं हैं। इस घोर कलिकाल में इस प्रकार के पवित्र जीवन बहुत ही कम देखने में आयेंगे। यह सभी को पता है ही कि श्री बहिनजी अपने बहुत छोटी आयु से ही बाल–विधवा थीं किन्तु सभी सत्संगी जगत को उनके जीवन की पवित्रता ने आश्चर्य में डाल दिया था। केवलमात्र 17 या 18 साल की उम्र में ही उनको पतिदेव का वियोग प्राप्त हुआ। उसी समय से बहिनजी का भोजन बहुत साधारण, कपड़े सादे और सफेद, पृथ्वी पर या तख्त पर सोना, पूरा–पूरा दिन नाम जप एवं संकीर्तन में ही मन को लगाना, घर में ही रहना, किसी प्रकार के रंग–राग, थियेटर, सिनेमा आदि रोचक दृश्यों में भूल करके भी न जाना। इस प्रकार की पवित्र एवं कठोर दिनचर्या इनकी आरम्भ हुई। और अन्तिम देहावसान के समय तक उनकी इस जीवनचर्या में किसी भी प्रकार का परिवर्तन नहीं आया। कितने ही वर्षों से सवाई आश्रम मेले के मौके पर वे आया करती थीं हम यह चेष्टा करते थे कि श्री बहिनजी का अब तो वृद्ध शरीर है वे पलंग पर सो जाया करें, किन्तु बिल्कुल नहीं। रजाई गद्दे बिछे रहते थे, मसनद और तकिये लगे रहते थे, द्रोपदी बहिनजी साधारण तख्त पर ही लेटती–बैठती थीं। मैंने कभी भी उनको मसनद और तकिया लगाये नहीं देखा। इस प्रकार से बहिनजी का जीवन दिव्य एवं तपोमय जीवन था।

स्वाध्याय

मैं यह ऊपर लिख ही चुका हूँ कि श्री बहिन जी का स्वाध्याय कितना प्रबल था। भक्त लोगों की उक्ति–

श्वांस-श्वांस में राम-रट, व्यथा श्वांस जिन खोय।
ना जाने या श्वाँस का, आवन होय न होय।।

मैं समझता हूँ कि श्री बहिनजी के जीवन में यह उक्ति पूरी तरह चरितार्थ होती रही। उनकी प्रातःकाल चार बजे से रात्रि दस बजे तक की दिन–चर्या में ऐसी कोई घड़ी नही होती थी,

जिसमें उनका स्मरण का तांता किसी भी प्रकार टूट जाए। प्रात: काल लगभग चार बजे उठना एवं प्रातःकालीन शौच, स्नान, व्यायाम आदि के नित्य कर्मों के अनन्तर कई घण्टों तक श्री प्रभुजी की कई प्रकार से आरतीयाँ व स्तुतियाँ किया करती थीं। यह क्रम उनका लगभग 7 या 7.5 बजे तक चलता रहता था। उसके बाद भागवत पाठ, संकीर्तन आदि करते हुए लगभग दोपहर के ग्यारह बज जाया करते थे। दो या तीन घंटे भोजन और विश्राम आदि में लगाने के बाद उनका सत्संग कार्य आरम्भ हो जाया करता था। ये कार्य शाम के लगभग 5 या 6 बजे तक चलने के बाद वही प्रात: काल की तरह विविध प्रकार की स्तुतियाँ करते हुए, आरती स्तुतियों में समय लगा करके स्वल्पाहार करके स्मरण करते हुए सो जाया करती थीं। उनके सत्संग का यह नियम था कि कोई भी सत्संग में आने वाली स्त्री किसी भी प्रकार की बाहरी बातें नहीं कर पाती थीं।

मैंने श्री बहिन जी की दिनचर्या एवं रात्रि–चर्या में एक ही बात का अनुभव किया कि उन्होंने अपने जीवन में उपनिषदों की इस उक्ति को भी चरितार्थ कर दिखलाया कि –

स्वाध्यायाद्योगमासीत्, योगात् स्वाध्याय मामनेत।

स्वाध्याय योग संपद्या, परमात्मा प्रकाशते।।

अर्थात् मंत्र, जप, सद्ग्रन्थों का पाठ नाम संकीर्तन आदि के द्वारा साधक योग को प्राप्त करे अर्थात् अन्तरानुभूति को प्राप्त हो जाये। संप्रज्ञात समाधि के अनुभव दिन दूने और रात चौगुने बढ़ने लगे और ध्यानानुभूति में स्वाध्याय का मनन करे, ऐसा करने से स्वत: ही परमात्मा का प्रकाश हो जाया करता है।

उनकी अन्तरानुभूतियों को यथार्थ में समझाने वाली उनके जीवन की अनेकानेक घटनाएँ हैं, जो कभी विस्तारपूर्वक लिखी जायेंगी। किन्तु उनके जीवन की परम उपयोगिता एवं कृतार्थता को समझने के लिए थोड़ा सा संकेत तो मैं कर ही दूँ कि जिससे श्री बहिन जी की ध्यान स्थिति और समाधि का ज्ञान सभी को हो जाए।

ध्यान-स्थिति

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी श्री बहिनजी को ' चतुर्भुजा ' कहकर बुलाया करते थे। उनका 'चतुर्भुजा' नाम श्री प्रभुजी के समय में पूरी तरह प्रचारित था। सभी उनके चतुर्भुजा नाम को इतना अधिक जानते थे जितना कि उनके निज नाम ' द्रोपदी ' को न जानते थे। इसका कारण केवल मात्र एक ही था कि श्री बहिनजी चलते–फिरते, उठते–बैठते हर समय समाधिस्थ ही रहा करती थीं। समाधि का लक्षण भगवान पतंजलि देव बिल्कुल सीधे और स्पष्ट शब्दों में लिखते हैं–

तदेवार्थमात्रनिर्भासं स्वरूपशून्यमिव समाधिः।

अर्थात् जिसमें ध्यान करने वाले को अपना रूप भी इष्ट देवता के रूप में दिखने लगे वही सम्प्रज्ञात समाधि की परिस्थिति है। बहिन द्रोपदीदेवी जी हर समय चलते–फिरते, उठते–बैठते भगवान के चतुर्भुज स्वरूप में अपने आपको लय देखती रहा करती थी। इसी कारण से उनका नाम ' चतुर्भुजा ' प्रचारित एवं प्रसारित हुआ। वह भी श्री प्रभुजी के स्वयं

मुखारविन्द से। उनकी ध्यानानुभूतियाँ कैसे होती थीं। इसको भी उनके जीवन की एक पवित्र घटना से सभी साधक समुदाय भली प्रकार से समझ जायेगा।

यह सभी लोग भली प्रकार से जानते ही हैं कि बहिनजी के इष्टदेव भगवान श्रीकृष्ण थे और वे ध्यान में और खुली आँखों हर समय उनका दर्शन करती रहती थीं। यहाँ तक कि भोजन बनाने के बाद जब तक भगवान श्रीकृष्ण उनकी थाली में परोसे हुए उनकी आँखों के सामने खा नहीं लेते थे तब तक बहिन जी भोजन नहीं करती थीं। धीरे–धीरे कर्ण परम्परा से यह बात सभी लोगों में फैल गई एवं सभी सत्संगियों ने मिलकर श्री प्रभुजी से यह प्रार्थना की कि हे प्रभुजी सुनते हैं कि बहिन द्रोपदी जी को थाली से स्वयं भगवान श्रीकृष्ण ग्रास उठाकर भोजन करते हैं कृपा करके हमें भी ऐसा दिखला दें। सत्संगियों की इस हार्दिक इच्छा को जानकर श्री प्रभु ने कहा, चतुर्भुजा पहले तो इस बात का किसी को पता नहीं लगना चाहिए किन्तु लग ही गया है तो तुम सबके सामने भगवान के समक्ष प्रार्थना करके भोग लगाओ ताकि सभी लोग यथार्थता के स्वरूप को जान जायें। श्री प्रभुजी के ऐसे आज्ञा प्रदान करने के बाद श्री बहिन जी ने सभी सत्संगियों के सामने थाल में भोजन रखकर आँखें बन्द करके बैठ गई और बन्द आँखें करके भजन बोला –

बैकुण्ठ वासी हे प्रभुजी भोग, लगा जा आजा।
मैं लिये बैठी हूँ थाल में अपने, भोजन भोग लगाजा आजा।।

बहिन जी के इस प्रकार स्तुति करने पर सभी सत्संगियों के सामने थाली में से ग्रास उठ–उठ कर आकाश में लय होने लगा। सभी को आश्चर्य हुआ कि श्री बहिन जी की कितनी उत्कृष्ठ साधना है, यह हर किसी को सुलभ नहीं हो सकती।

नियमानुबन्धन

श्री आनन्दकन्द प्रभुजी ने अपने आश्रम के नियमों में एक नियम बनाया था कि 9 वर्ष की उम्र से ऊपर कोई भी बच्चा महिलाओं के सत्संग में प्रवेश नहीं कर सकेगा। श्री बहिन जी ने आश्रम में अपनी वृद्धावस्था तक इस नियम को इतनी कड़ाई के साथ निभाया कि कोई बालक भी इस उम्र का सत्संग में शामिल नहीं हो सकता था। मुझे एक बात याद है कि श्री बहिन जी एक दिन अपने सत्संग की ध्यानस्थिति का वर्णन कर रही थीं और वे साथ–साथ यह भी कह रही थीं कि मुझे तो ऐसा मालूम पड़ता है ' कि यह देवी कोई देवलोक से आई हुई भगवान श्रीकृष्ण की सहचरी है। ' मैंने बहिन जी से स्वयं प्रार्थना की कि बहिन जी ! ऐसी देवी के दर्शन तो आप कृपा करके मुझे भी करा दीजिये ' आपकी बड़ी कृपा होगी। श्री बहिन जी ने उत्तर दिया– भाई जी ! ऐसा कैसे हो सकता है ! आप श्री प्रभुजी के बनाये नियमों को तो पढ़लें। मैंने बहिन जी के नियमानुबन्धन को भली प्रकार से समझ लिया और उनसे फिर इस प्रकार की कभी नहीं की।

बहिन जी की इन पवित्र यत्किंचित् घटनाओं से सभी साधक समुदाय भली प्रकार से यह समझ गया होगा कि श्री बहिन द्रोपदीजी का जीवन कितना उज्जवल, तपोमय एवं अनुकरणीय रहा। श्री बहिन जी का वियोग हम सभी के लिए महा दुःखदायी है। यद्यपि उन्होंने तो अपने जीवन को पूर्णरूपेण सफल करके पूर्ण सद्गति को पा लिया, किन्तु इस मृत्यु–लोक में

हम लोगों के लिये उनका अभाव हो ही गया। जैसी उन सर्व शक्तिमान की इच्छा इसमें और कोई कर भी क्या सकता है ?

अन्य और दो आघात

कालगति अति प्रबल है। वह किसी प्रकार से प्राणी को ले जाता है, इसका कोई ज्ञान भी नहीं हो पाता। कई साल से यह देखने में आ रहा है कि रामनवमी के महोत्सव के मौके पर ही हमारे कई अन्यान्य सत्संगी एवं सत्संग प्रचारक बच्चों का वियोग हो जाता रहा। पिछले वर्ष ठीक इसी मौके पर आश्रम के परम सेवक एवं मिर्जापुर क्षेत्र के बड़े ही भावुक प्रचारक **लाला लखनलाल वैद्य** हम लोगों से बिछुड़ गये थे। यद्यपि उनका अपना चिन्तन और स्मरण बराबर बना रहा, किन्तु ठीक इस महोत्सव के मौके पर ही वे हमसे बिछुड़ गये।

इस साल हमारे दतिया के प्रमुख प्रचारक दतिया में सत्संग की नींव को जमाने वाले बाबू शारदाशरणा सक्सेना एडवोकेट रामनवमी से लगभग डेढ़ महीने पहले गाजियाबाद में हम लोगों से बिछुड़ गये। बाबू शारदाशरण की यह प्रबल इच्छा थी कि अपने इस अन्तिम समय से पहले वे किसी प्रकार हम लोगों से मिललें, किन्तु काल ने उनको इतना भी समय न दिया और गाजियाबाद में ही चिकित्सा–काल में परलोकवासी हो गये।

ठीक रामनवमी से 2–3 दिन पहले परम योग–प्रचारक गोपालगंज (बिहार) के जिलाधीश परम योग्यतम मेरे बच्चे महेश नारायण शर्मा की किसी महादुष्ट पापी ने बम मारकर हत्या कर डाली। यह असहनीय आघात हुआ जिसका रह–रहकर स्मरण मेरे मन में बराबर बना रहता है। उधर श्रीबहिन जी के बारे में तो ऊपर लिख ही दिया है। ये सभी घटनाएँ इस मनुष्य–लोक की नश्वरता को भली प्रकार से समझा रही हैं, जिनको सुनकर और पढ़कर हर सत्संगी को सावधान हो जाना चाहिए। पता नहीं हम लोगों में से कौन और कब बिछुड़ जाय ? इसलिये इस बात को याद रख लेना चाहिए कि–

यावत् स्वस्थ्य मिदं देहं, यावत् मृत्युश्च दूरतः।
तावदात्म हितं कुर्यात्, मरणान्ते किम् करिष्याति।।

अर्थात् जब तक यह शरीर स्वस्थ है और शरीर में प्राण चल रहे हैं तब तक जितना हो सके अपने भले का प्रयत्न कर लेना चाहिए अन्यथा काल का अंकुश हरेक के सिर पर है। इस काल के आक्रमण से बड़े–बड़े ऋषि–मुनि भी नहीं बच पाये। इसलिये जितना अधिकाधिक हो सके उतना ही हर सत्संगी को अपने जीवन को सदुपयोग में लगाये रखना चाहिये, जिससे मनुष्य जीवन के फल को पा सके। शेष शुभ है, यही कामना है।

सिद्धयोग वार्षिक पत्रिका 2021–2022

आय			व्यय		
बैंक में पिछला जमा	=	8, 49, 454.00	कागज छपाई	=	1, 59, 680.00
वार्षिक शुल्क	=	1, 21, 491.00	टिकट आदि	=	15,000.00
कुल	=	9, 70, 945.00	बाइंडिंग	=	5,000.00
			बैंक में जमा	=	7, 91, 265.00
			योग कुल	=	9, 70, 945.00

सहयोग राशि वालों के नाम

1.	दयालु जी महाराज	भिवानी	1100/–
2.	सत्यनारायण वत्स	दिल्ली	500/–
3.	किशन शर्मा	रोहतक	1100/–
4.	विपुल अग्रवाल	रोहतक	11000/–
5.	अणिमा	वाराणसी	551/–
6.	शुभम दुबे	कुकुआ	1100/–
7.	नीतू अग्रवाल	जयपुर	500/–
8.	चन्द्रशेखर गुप्ता	गंगापुर सिटी	500/–
9.	राजकुमार गोस्वामी	इंदौर	2100/–
10.	शाहब सिंह तोमर	जालौन	1000/–
11.	सुरेश चन्द गुप्ता	उरई	2100/–
12.	जगदीश चन्द वर्मा	अहमदाबाद	21000/–
13.	जामवन्त अभय राय	मऊ	1500/–
14.	राज कुमार शास्त्री	घरौण्डा	1000/–
15.	अणिमा कृष्ण मोहन	वाराणसी	500/–
16.	कपिल कुमार शर्मा	कापरेन	300/–
17.	संजय त्रिपाठी	कौशाम्बी	500/–
18.	दिनेश चन्द्र गुप्ता	करौली	500/–
19.	गुर्जरमल	गंगापुर सिटी	500/–
20.	राजेन्द्र कुमार	GGC	1000/–
21.	कृष्णा – कानपुर	GGC	500/–
22.	महेश शर्मा	GGC	200/–
23.	गोविन्द प्रसाद गुप्ता	GGC	5100/–
24.	मदनमोहन अग्रवाल	GGC	500/–
25.	मदन मोहन गुप्ता	GGC	2000/–
			कुल = 56, 651

पत्रम्-पुष्पम्-फलम्-तोयम्

लोक में अपने-अपने वर्ण के अनुरूप सदाचार पालन करने से भी मनुष्य शिव पद को प्राप्त कर लेता है। वर्णानुकूल आचरण से तथा भक्ति से वह अपने सत्कर्म का अतिशय फल पाता है। निष्काम भाव से किया हुआ सारा कर्म साक्षात् शिव पद की प्राप्ति कराने वाला होता है।

तपो निष्ठ योगी और ज्ञान निष्ठ यति से पूजा के योग्य हैं, क्योंकि ये पापों के नाश के कारण होते हैं।

जिसको जिस वस्तु की इच्छा हो और यदि वह वस्तु बिना मांगे देदी जाय तो दाता को उस दान का पूरा-पूरा फल प्राप्त होता है। ऐसी महर्षियों की मान्यता है जो याचना या मांगने पर दिया जाता है वह दाता को दान का आधा फल ही प्राप्त कराता है। ऐसा शास्त्रों का मत है।

ध्यान यज्ञ से बढ़कर कोई वस्तु नहीं है। ध्यान ज्ञान का साधन है। क्योंकि योगी ध्यान के द्वारा अपने इष्टदेव शिव का साक्षात्कार करता है।

देवता का अभिषेक करने से आत्म शुद्धि होती है। गन्ध से पुण्य की प्राप्ति होती है। नैवेद्य लगाने से आयु बढ़ती है और तृप्ति होती है। धूप निवेदन करने से धन की प्राप्ति होती है। दीप दिखाने से ज्ञान उदय होता है और ताम्बूल समर्पण करने से भोग की उपलब्धि होती है।

पृथ्वी, जल, तेज वायु और आकाश ये पांच भूत तथा शब्द स्पर्श आदि इनके पांच विषय। यह सब मिलकर दस वस्तुयें मनुष्यों की कामना के विषय हैं। इनको आशा मन में लेकर जो कर्मों के अनुष्ठान में संलग्न रहते हैं वे इस प्रकार प्रवृत (अथवा प्रवृतिमार्गी) कहलाते हैं तथा जो निष्काम कर्म करते या शास्त्र विहित कर्मों का अनुष्ठान करते हैं वे निवृत (अथवा निवृत्तिमार्गी) कहे गये हैं।

- शिवमहापुराण से

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Agra 19/21-23 APRIL 2022

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री ______________________

____

____

गूढ़विद्यस्य सर्वेषां देहिनां ज्ञानसंभव:
उदय: स्वप्रकाशेन गुरुशब्देन कथ्यते

सब देहधारियों से गूढ़ विद्या से ही ज्ञान का सम्भव है। स्वप्रकाश से उदय होना गुरु शब्द से कहा जाता है।

संस्थापक :– योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14565. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा